श्याम का स्वभाव

सुदर्शन सिंह 'चक्र'

श्याम का स्वभाव

लेखक

सुदर्शन सिंह 'चक्र'

प्रकाशक :–
राजदीप नारायण शंखधर
1/267 रिफाइनरी नगर
मथुरा (उ0 प्र0)

प्रकाशन तिथि :–
आश्विन कृष्ण एकादशी, संवत् 2067

संस्करण–तृतीय

न्यौछावर :–
40/– रुपये मात्र

प्राप्ति स्थान :–
हनुमद्धाम (श्रीराम आध्यात्मिक
प्रन्यास) शुकतीर्थ–मुजफ्फरनगर
(उ0प्र0) 251316

मुद्रक :–
शारदा ऑफसैट प्रिन्टर्स
शिकोहाबाद रोड, एटा

अपनी बात

अनन्त शक्ति केवल कन्हाई है । जीवकी शक्ति–सीमा है । यद्यपि मेरी लेखनी अपनी न कभी थी, न–है वह मैंने मांगी थी अपने कनूं से! किन्तु उसकी कृपाके अवतरणके योग्य भी तो मानस चाहिए । जब मुझे लगने लगा कि मेरा मस्तिष्क अब नूतन तथ्य ग्रहण करनेमें अक्षम होता जा रहा है–लगा कि अब कहानी–लेखन के साथ न्याय नहीं कर पाऊँगा । कभी मैंने प्लाट लेकर–सोचकर कहानी लिखीं नहीं । कहानीके माध्यमसे कोई तथ्य–कोई शास्त्रीय तथ्य अथवा श्लोक, सूत्र आदि की व्याख्या ही तो मैंने प्रस्तुत की सदा । जब लगने लगा कि मुझे इस प्रकार जो कहना था ; कह चुका, तब कहानी–लेखनका अर्थ रह गया नवीन नाभ, घटनाओं के द्वारा पूर्व–कथित तथ्यकी पुनरावृत्ति । परन्तु यह भी उचित नहीं लगा । अतः अपने आग्रही पाठकों प्रकाशकोंके आग्रहकी उपेक्षा करके मैंने कहानी लेखन बन्द कर दिया ।

कहानी–लेखन बन्द करनेसे शरीर–निर्वाहकी आवश्यकता तो नहीं समाप्त होनी थी । मेरे निर्वाहका साधन तो लेखनी ही थी । अतः मुझे दूसरी दिशा देखनी पड़ी। कहानी–लेखन बन्द करनेके दूसरे ही वर्ष मैंने दस लेख एक साथ लिखे 'श्याम का स्वभाव इस शीर्षकसे ।'कल्याण' का प्रथमाङ्क विशेषाङ्क , उसके बादका अङ्क परिशिष्ठ । अतः जैसे एक साथ दस कहानियाँ मैं पूरे वर्षके लिये श्रीभाईजी (हनुमानप्रसादजी पोद्दार) को भेज देता था, ये दस लेख भी भेज दिये ।

मेरे कन्हाईने सदाकी भाँति ही साथ दिया था । यह स्नेह–स्वरूप अपनोंकी उपेक्षा करना जानता ही नहीं । इसके अदृश्य सहयोगका ही परिणाम था कि ये लेख भी पाठकोंको कहानियों के समान ही प्रिय लगे । इसीसे उत्साहित होकर मैंने अगले वर्ष 'शिव–स्मरण' के दस लेख भेज दिये एक साथ।वे पृथक–पृथक शीर्षकोंसे कई वर्षों में 'कल्याण' में निकले।

'कल्याण' में प्रकाशित 'श्यामका स्वभाव' के उन्हीं दस लेखोंका यह संग्रह है। पाठकोंको यह श्यामकी ओर उन्मुख करनेमें कुछ भी योग दे सके तो मेरा श्रम सफल होगा।

सुदर्शन सिंह 'चक्र'

श्यामका स्वभाव

आपका कुछ परिचय है भैया यशोदाके लाड़लेसे ?

श्री व्रजराजकुमार से परिचय करनेकी इच्छा है आपकी ?

देखिये, यह नन्दबाबा का लड़का अभी बहुत नन्हा है। बहुत सुन्दर, बहुत सुकमार है तो क्या हुआ--बहुत भोला है। ठीक–ठीक कछनी तो इसे अपनी कटिमें लपेटनी नहीं आती। मैया पहना दे तो ठीक, वह प... न हो; क्योंकि अनेक बार यह खेलमें उसे खोल फेंकता है और फिर दाऊ भैयाके सामने जा खड़ा होता है–'दादा ! तू पहना दे।'

लेकिन इतने भोले कन्हाईको पता नहीं, क्या–क्या आता है। पता नहीं, कहाँ--कहाँकी बातें मौज में आती हैं तो करने लगता है। जो जीमें आती है, बोलता है और जो जीमें आती है, कर लेता है। कोई नहीं कह सकता कि धुन चढ़ जाय तो कन्हाई अमुक काम कर नहीं सकता।

बहुत भोला, बहुत नन्हा है श्यामसुन्दर। इसलिए सबसे अच्छा लगता है इसे अनुकरण करना और यह अनुकरण इतना अच्छा, इतना सच्चा कर लेता है कि पूछिये मत। हम आप तो क्या सृष्टिकर्ता तक सिर पकड़के बैठ जायँ इसका अनुकरण देखकर।

आप इस गोपाल से परिचय करना चाहते हैं ?

मत पूछिये कि 'यह कहाँ मिलेगा ?'

'बिना मिले परिचय ?'

'जी–कहा नहीं कि इसका भोलापन असीम है। आप एक चित्र, एक लकड़ी–पत्थरकी मूर्ति ले लीजिये। सुन्दर, असुन्दर–ऊट–पटाँग कैसी भी और कहिये'–'कृष्ण'! यह तू है।

कन्हाई निश्चय कहेगा'हाँ, यह मैं हूँ।'

अब किसके मुखमें हाथ भरकी जीभ है कि वह कहेगा कि 'यह मूर्ति या चित्र श्रीकृष्ण नहीं है।

'यह मैं तेरी पूजा करहा हूँ।' आप दूब, तुलसी, जल फूल–क्या चढ़ा रहे हैं, इसे कौन देखता है। गोपका नन्हा बालक कहाँ समझता है कि पूजा क्या होती है और कैसे होती है । पूजाके मन्त्र, पूजाके पदार्थ–यह सब विद्वानोंके लिए रहने दीजिए। आप कर लीजिये पूजा। जैसी आपको आती है--जो कुछ आपके पास है उससे ।

'अच्छा, तुम मेरी पूजा करते हो ? बहुत अच्छे हो तुम। श्यामको पूजा स्वीकार है तो 'पूजा सम्यक् परिपूर्ण नहीं है' यह कहने का कोई साहस करेगा ?

'यह देवता नहीं है–पत्थर है ।' लोगों ने कहा।

'हाँ पत्थर है।' गोपालको तो अनुकरण ही आता है।

'हमारा धर्म है मूर्तिको तोड़ना। हम इसे तोड़ेंगे।' लोगों ने यह भी कहा।

'तोड़ दो! तुम्हारा धर्म है तोड़ना–तोड़ो! कृष्णचन्द्रको तो मूर्ति–भञ्जनमें भी पूजन–जैसा ही आनन्द आया। उसे खिलौनों से खेलने में आनन्द आता है तो सखा जब कोई खिलौना धड़ामसे पटककर फोड देते हैं तो उसमें भी आनन्द आता है वह तो उछल कूदकर तब ताली बजाता है ।

'ईश्वर नहीं है।' आपने कहा।

'हाँ नहीं है ईश्वर। क्या आवश्यकता है ईश्वर की ।' लीजिये, इस नटखटे ने छुट्टी कर दी। अब आप जानो और आपका काम जाने। आपके लिये ईश्वर नहीं है । आपको अब ईश्वरसे कोई सहायता, स्नेह, सुविधा पाने की आशा नहीं करनी चाहिए। ईश्वर आपके निर्माण पतनोत्थानमें टाँग अड़ाने अब नहीं आवेगा ।

आप उसके विधानमें टाँग अड़ावेंगे ?

इसे धोखेमें मत रहिये । उसका विधान छुईमुई नहीं है। जबतक उसके विधानकी सीमामें आप उछल–कूद करते हैं, ठीक है; किन्तु आपने उस सीमा के अतिक्रमणकी चेष्टा भी की तो..................भाई मेरे ! चींटी समुद्र तैरने जायगी तो क्या होगा ?

आप हिमालय पर सिर पटकेंगे तो हिमालय टूटेगा या आपका सिर ?

अतः ईश्वरके विधानकी चिन्ता मत कीजिये ।

अपनी चिन्ता कीजिये। अपनी चिन्ता करनेवालों में ही हैं जो कहते हैं–ईश्वर है, किन्तु निराकार है।'

श्रीकृष्णचन्द्रको तो जैसे प्रतिध्वनि करनी आती है–हाँ, ईश्वर निराकार है।'

'ईश्वर निराकार तो है ; किन्तु सगुण है । अनन्त दयालु,सर्वज्ञ,

सर्वसमर्थ है।'

'हाँ–अनन्त दयालु,सर्वज्ञ,सर्वसमर्थ है।'

अब लीजिये–ईश्वर आपसे तटस्थ नहीं रह गया। वह अनन्त दयालु, सर्वज्ञ, सर्वसमर्थ होकर आपसे तटस्थ कैसे रह सकता है ? अब आप उसकी दयापर, उसकी सामर्थ्यपूर्ण सहायता पर निर्भर रह सकते हैं। आप पुकारिये । आप प्रार्थना कीजिये–वह सुनेगा।

'नहीं सुनता ।'

यह आपने क्या कहा ? ऐसा कैसे हो सकता है कि आप पुकारें और आपका सर्वज्ञ, अनन्त दयालु, सर्वसमर्थ ईश्वर न सुने।

रुकिये! आपने ठीक पुकारा ?

'ठीक पुकारना क्या ?

अरे भाई ! आप इसे ईश्वर परमेश्वर कुछ भी कह लो, है तो यह नन्द बाबा का लाला ही। बाबा ने इसे कुछ पढ़ाया–लिखाया नहीं। गोप–बालक वैसे भी गुरुगृह नहीं जाते और श्याम तो अभी नन्हा है । इसे कहाँ संस्कृत या पद–भजन समझमें आते हैं । लच्छेदार भाषा यह समझता कहाँ है। यह समझे, ऐसी भाषामें आपने इसे पुकारा ?

'कौनसी भाषा यह समझता है ?

केवल हृदय की भाषा ! हृदयकी भाषा तो यह गायों तककी समझ लेता है, आप तो मनुष्य हैं । इसकी भाषामें इसे पुकारिये, सुनेगा कैसे नहीं ।

'ईश्वर–ब्रह्मतत्व निर्गुण, निराकार, निर्विशेष है । अपनेसे अभिन्न रूप में उसकी अनुभूति होती है।' ऐसे प्रकाण्डदार्शनिकोंका भला श्रीकृष्णसे क्या प्रयोजन ? निर्विशेषको तो हाँ–ना कुछ करना नहीं । प्रयोज्य–प्रयोजक प्रयोजन हम–तुम वहका भेद ही वहाँ नहीं है।

ब्रह्मरूप ऐसे महापुरुषोंकी चर्चा मैं नहीं करता।कन्हाई भी उन्हें बाबा या मैयाके सिखानेपर दोनों नन्हें हाथ जोड़कर प्रणाम ही करता है।

चर्चा आपकी–आप व्रजराजकुमार से परिचय करना चाहते हैं न ?

अच्छा, एक महत्वपूर्ण बात –'ईश्वर निष्ठुर है, क्रूर है, पक्षपाती है । ऐसी बात भूलकर भी मत सोचिये ।

'क्यों ?

इसलिये कि इस नटखटको अनुकरण ही तो करना आता है ।
कहीं इसने भी कह दिया—हाँ ईश्वर निष्ठुर है, क्रूर है, पक्षपाती है ।'

क्या बिगाड़ लेंगे आप इसका ?

आपका तो सब बिगड़ा ही धरा है ऐसी दशामें।

'तब ?'

तब इस क्रमसे चलिये—

'कन्नूँ! तू ईश्वर है ?'

हाँ, मैं ईश्वर हूँ।' कृष्ण दूसरा कुछ कह नहीं सकता।
'तू कोटि—कोटि ब्रह्माण्डोंका परमेश्वर, सबकी सृष्टि—उत्पत्तिका परम नियन्ता है।'

'हाँ—हूँ।'

'तू सर्वज्ञ, सर्वसमर्थ, अनन्त करुणार्णव, सर्वेश्वरेश्वर है।'

'सो तो हूँ ही।'

'और मैं तेरा हूँ।' दृढ़तासे—पूर्णतासे कहिये।

'हाँ—तू मेरा है। उतनी दृढ़तासे, उतने झटकेसे स्वीकृतिमें सिर हिलाकर श्याम कहेगा—कहेगा ही। बस, और क्या चाहिये आपको।

लोगों ने कहा—'तुम मेरे स्वामी हो !'

'हाँ—मैं तुम्हारा स्वामी हूँ।'

'तुम मेरे सेवक हो !,

'हाँ मैं तुम्हारा सेवक हूँ।'

'तुम मेरे पिता !'

'हाँ—मैं तुम्हारा पिता।'

'तुम मेरे पुत्र !'

'अच्छा, आप मेरे बाप।'

'तुम मेरे भाई !

'हाँ दादा ! मैं तुम्हारा भाई।'

नन्दलालको कहीं अस्वीकार करना आता है ।आपका सिर स्वीकृतिमें झुकता है तो उसका दुगना झुकता है। स्मरण रखिये कि आप ही उसे अस्वीकार करना सिखला सकते हैं। कहीं आपका हृदय कहने लगा–'श्रीकृष्ण ईश्वर नहीं !'

निश्चय वह अपना सिर हिला देगा–'मैं ईश्वर नहीं।'

'कोई ईश्वर नहीं ?'

'हाँ, कोई ईश्वर नहीं।'

'ईश्वर है–पर मुझसे रुष्ट है।'

'तुमसे रुष्ट है ?'

'मुझ पर कृपा नहीं करता।'

'हाँ, नहीं करता।'

इसलिए इस भोले बच्चे को अस्वीकृति मत सिखाइये। महाराज दशरथ, माता कौसल्याने इसे पुत्र बनाया। पुत्र तो बनाया ब्रजके गोपों–गोपियों ने। पता नहीं, कितनोंने इसे स्वामी बनाया और कितनोंने सेवक। कितनोंने सखा बनाया और इस सुकुमार की पीठपर चड्ढी कसी। इसको स्वयं अस्वीकार करना नहीं आता। आप अस्वीकृति में सिर हिलाओगे तो इसका सिर अस्वीकृतिमें हिलेगा।

प्रह्लादने कहा'पत्थरके खम्भेमें भगवान हैं।' पत्थरके खम्भेसे यह नृसिंह बनकर निकल पड़ा।

हिरण्यकशिपुने कहा–'यह मायावी हरि मुझे मारने को प्रकट हुआ।'

नृसिंहने उसका पेट फाड दिया। वे त्रिलोक–भयंकर भगवान नृसिंह जिनके समीप जानेका साहस ब्रह्माजीमें तो क्या होता, लक्ष्मीको भी नहीं हुआ। प्रह्लाद निर्भय चले गये और बोले–'मेरे स्वामी !'

नृसिंहने उठाकर गोदमें बैठा लिया और जीभसे चाटने लगे–'मेरे बच्चे।'

'यह मैया यशोदाका नटखट रूप बदलना बहुत जानता है ; किन्तु स्वभावका क्या करें। कोई अपना स्वभाव बदल पाया है। या यही बदल लेगा ? यह सिंह बने या सूअर, मछली बने या कछुआ; वामन बने या विराट ब्राह्मण बने या क्षत्रिय–स्वभाव इसका यही कि आप इसे जो कहो, आपके लिए यह वही है। आपमें दमखम है तो कह सकते हैं–

'कन्हाई ! तू मेरा है।'

'हाँ–मैं तेरा हूँ। मोहनका वचन पक्का है।

'तुझे मैं जैसा कहूँगा–वैसा तू करेगा।'

'अच्छा, मैं वैसा ही करूँगा।'

मैं कहूँ बैठ तो बैठ और कहूँ उठ तो उठ।'

'जो आज्ञा ! कोई आपत्ति नहीं, कोई अप्रसन्नता नहीं, कोई खेद नहीं। श्यामसुन्दर तो सदा प्रस्तुत है।'

आप कहते है–'भगवद्दर्शन नहीं होता।'

आपने कभी दृढतासे कहा–'श्याम ! तू मेरा है। चल सामने आ !

लेकिन भैया ! क्या अच्छा लगेगा इस परम सुन्दर, परम सुकुमार भोले नन्हें व्रजेन्द्रनन्दनको इस प्रकार दौड़ाना ? इस प्रकार अपनी इच्छाके अनुसार विवश करना ? क्या सुख मिलेगा आपको इसे श्रान्त करके–इसे व्यस्त करके ?

यह आनन्दकन्द है जो हँसता–खेलता, कूदता–फुदकता अपनी क्रीड़ामें लगा ही अच्छा लगता है। इसे देखने, इसे स्मरण करनेमें–इसे अपना बनाकर स्मरण करनेमें, इसको उत्फुल्ल करने में जो असीम अचित्य सुख है–किसी इच्छा की पूर्ति किस तुलनामें है उसके ? कहीं अमृत–महासिन्धुकी तुलना सड़े गड्ढेके जलकी बूँदसे की जा सकती है ?

इसे अपना बनाना–यह क्या कठिन है। जब गोप, गायें, वनके कोल–किरात इसे अपना बना लेते हैं तो आप क्यों नहीं बना सकते ? इसे कहाँ बड़ा पाण्डित्य, भारी तपस्या या योग चाहिए? यह स्वयं कहाँ योगी, तपस्वी या विद्वान है। नन्हा–सा गोपशिशु और वह भी भोला इतना कि अस्वीकार करना इसे आता नहीं। आप दृढ़तासे कहो तो–

'कनूँ ! मैं तेरा और तू आजसे मेरा !'

कन्हाई अस्वीकार कर नहीं सकता और यह बात कोई मैं अपनी ओरसे गढ़कर–बनाकर नहीं कर रहा हूँ । इसकी साक्षी तो वेद–पुराण–शास्त्र सब हैं। सब सन्तमहापुरुष इस बात को जानते–मानते हैं। स्वयं श्यामसुनदरने कुरुक्षेत्रकी रणभूमि अर्जुनके रथपर बैठकर इस अपने स्वभावकी घोषणा की है । आप गीता उठाकर देख लीजिये, इसी नन्दलालने कहा है–

'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्थैव भजाम्यहम्।' (4/11)

मेरी जन्म भूमि ग्राममें है। उस ग्राममें और उसके आसपासके अहीरों के बहुत घर हैं अबकी बात नहीं कहता–अब तो नयी सभ्यता की वायु सबको लग गयी है। अब कहाँ जातीय पन्चायतोंमें निष्ठा है ? बात अपने बचपन की कह रह हूँ। तबतक गाँवके लोग सीध े थे, ईमानदार थे और उनमें परस्पर स्नेह, सहानुभूति भरपूर थी। तब जाति–भाईका अर्थ बहुत महत्त्वपूर्ण था और अहीरों में तो सजातीय होना सगे भाई होने जैसा था। यह सब इसलिए था कि नवीन शिक्षा, नयी सभ्यता तबतक गाँवमें पहुँची नहीं थी । गाँवमें के लोग सभ्य नहीं बने थे।

अहीर वीर जाति है और साथ ही उपद्रवी जाति भी। अहीर जिसके अपने हैं, उसके अपने हैं और जिसके शत्रु हैं, भगवान ही उनका कुशल–क्षेम रखें। पिताजीको आसपासके अहीर अपना देवता मानते थे। क्यों मानते थे–

पता नहीं, क्योंकि तब मैं बहुत छोटा था। सामान्यतः राजपूतों और अहीरों में उस ओर स्पर्धा ही चलती है, किन्तु पिताजी इसके अपवाद थे। फलतः अहीरोंके स्वभावके सम्बन्धमें मेरा बाल्यकालका ज्ञान अल्प नहीं है।

किसी अहीरसे किसीका झगड़ा हुआ और उस अहीर को कसकर पाठ पढ़ा देने की सूझ गयी। बस, उसे सूझ जानी चाहिए। अहीर तब पढ़े–लिखे नहीं थे और कहा जाता है कि बुद्धि भी कुछ मोटी ही होती थी उनकी। भैंस चराना, दण्ड–बैठक करना, अखाड़े में ताल देना, लाठी चलाना–इनमें जो निपुण वह अहीरोंमें श्रेष्ठ। जिसके घर जितनी भैसें, अहीरोंमें वह उतनी ही धनी। अतः अहीर से उलझना कोई नहीं चाहता था। कहीं खटपट हो गयी किसीसे और उस अहीरको सूझ गयी–बस सूझना चाहिए।

गाँवसे बाहर खेतमें अहीर अपनी एक झोंपड़ी तो रक्खेगा ही। उसकी भैंसें, बैल वहीं, बँधेंगे और घरका सबसे पुष्ट तरुण रात्रिको वहीं सोयेगा। घरके दो–तीन व्यक्ति भी वहाँ सो सकते हैं। बँधा समय और
बँधा नियम–जिसे किसीपर क्रोध उतारनेकी सूझ गयी है, वह लगभग
अर्धरात्रि को लाठी लेकर अकेला उठेगा। अपने गाँव में या समीपके गाँव में जहाँ भी दूसरे अहीरकी झोंपडी है, वहाँ पहुँचेगा । वहाँ सोनेवाले का पैर या खींचकर उसे जगा देगा और बिना एक शब्द बोले चल देगा । जागनेवाला कुछ पूछेगा नहीं । वह लाठी उठायेगा और जगानेवाले के पीछे हो लेगा।

'मैं इधर जाता हूँ। अमुक–अमुक गाँव तुम्हारे हिस्से !' सौ–दो–सौ पद जाकर जगानेवाला पीछे देखकर पीछे आनेवालेको कह देगा और आगे बढ़ जायगा। पीछे आनेवाला बताये ग्रामोंकी ओर बढ़ जायगा । इतना

और उसे जगानेवाला कहता जायगा–'दो या तीन घड़ीमें अमुक स्थानपर सब आ जायेंगे।'

अब आगे क्रम यह है कि जो किसीको जगायेगा, उसे यही संदेश देगा और अपने हिस्सेके गाँवों में–से कुछ उसके हिस्से कर देगा। दो–तीन
घड़ीमें निश्चित स्थानपर लाठी लिये अहीरोंका एक समुदाय एकत्र हो जायगा । कितने व्यक्ति एकत्र होंगे, यह तो जिसने एकत्र करना प्रारम्भ किया था, उसकी इच्छापर है। वह दस पर्याप्त मानता हो तो दस और पाँच सौ मानता हो तो पाँच से। उसने कितने गाँव, कितने झोपड़ोंके लोगोंको एकत्र करना चाहा, इस पर संख्या निर्भर है।

वे एकत्र लोग कुछ पूछेंगे नहीं। एकत्र करनेवाला क्या करायेगा, यह उसकी इच्छा। खेत उखड़वा दे, घरखलियान फुँकवा दे, लाठी बजने लगे रातको प्रतिपक्षीके सिर पर............कुछ भी जो एकत्र करनेवाला चाहे। 'ऐसा क्यों ? कोई नहीं पूछेगा। एक अहीर ऐसा चाहता है–अहीरों के लिए इतना पर्याप्त था।

मैं नहीं कहता कि यह कोई भली बात थी या है। अब तो अहीरोंमें ऐसा संगठन रहा नहीं है। अब तो उनमें अच्छे सुशिक्षित लोग हैं। अब उन्हें 'ऐसा क्यों ? किसलिए ?' पूछना आ गया है। वे बड़ी त्वरासे सभ्य होते जा रहे हैं। मैं तो उस समयका एक यथार्थ वर्णन कर रहा था और यह वर्णन भी इसलिए कि नन्दबाबा भी गोप अहीर ही हैं। उनका लड़का पढ़ा–लिखा नहीं है। इसे आधुनिक सभ्यताकी वायु ने स्पर्श नहीं किया है। इससे परिचय करना है तो इस अहीर लड़केका स्वभाव समझ लेना आपके हित में होगा।

'यस्त्वां द्वेष्टि स मां द्वेष्टि।'

इस नन्दकुमारने महाभारत युद्धसे पहले स्पष्ट कह दिया 'अर्जुन

से–'अर्जुन ! जो तुमसे द्वेष करता है, वह मुझसे द्वेष करता है। तुम्हारा मित्र,वह मेरा मित्र, और तुम्हारा शत्रु, वह मेरा शत्रु यह गोपकुमार कन्हाई 'क्यों ?' किसलिए ?करना जानता ही नहीं हैं। इसे दो टूक निर्णय करना आता है–'जो अपने हैं, वे अपने हैं। जो अपनोंके विरोधी हैं, वे अपने भी विरोधी हैं।'

'अपने कभी अपराध नहीं करते।' अद्‌भुत मान्यता है अहीरकी। सामान्य अहीर इस मान्यतासे चूक सकता है, किन्तु ब्रजराजका कुमार कभी चूकता नहीं। इसे अपनोंके दोष दीखते ही नहीं। इस नटखटको छोड़िये, मर्यादा–पुरषोत्तमकी चर्चा करते गोस्वामी तुलसीदासजी को कहना पड़ा–

जेहि अघ बधेउ ब्याध जिमि बाली।
फिरि सुकंठ सोई कीन्हि कुचांली।।
सोई करतूति विभीषण केरी ।
सपनेहुँ सो न राम हिय हेरी।।

श्रीरामके हृदयमें स्वप्नमें भी नहीं आया कि सुग्रीव–विभीषणसे कोई भूल भी हुई है। अपनोंके दोष देखनेका स्वभाव ही नहीं है।

साहिब होत सरोष, सेवक के अपराध सुनि ।
अपने देखे दोष, राम न सपनेहुँ उर धरे।।
'समदरसी मोहि कह सब लोगू।'

सब लोग कहते है कि 'ईश्वर समदर्शी, न्यायनिष्ठ है।' लेकिन यह बात क्या परम सत्य है। ऐसा नहीं है–

तदपि करहिं सम विषम विहारा।
भगत अभगत हृदय अनुसारा।।

जो भक्त नहीं हैं, जो इस गोपकुमारके अपने नहीं हो गये हैं, उनके सम्बन्धमें यह परम समदर्शी है। लेकिन जो इसके अपने हो गये हैं, उनका सम्बन्ध जहाँ आया,

वहाँ सारी समदर्शिता एक ओर पटक देता है यह। भक्त–पक्षपाती भगवान है–शास्त्रको भी यह स्वीकार करना ही पड़ा है। जहाँ भक्त–पक्षपाती भगवान है–शास्त्रको भी यह स्वीकार करना ही पड़ा है। जहाँ भक्तकी बात आयी, इस भगवानको न न्याय दीखता, न अन्याय। इसे तो केवल भक्त देखता है।

अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव द्विज।
साधुभिर्ग्रस्तहृदयो भक्तैर्भक्तजनप्रियः ।।

(श्रीमद्भा0 9--4–63)

'दुर्वासाजी ! मैं परतन्त्र–गुलामकी भाँति अपने भक्तोंके अतः पराधीन हूँ। साधु भक्तोंने मेरे हृदय पर अधिकार कर लिया है। मुझे तो यही सूझता है कि भक्तोंका प्रिय कैसे हो। मैं उनका ही प्रिय हूँ।' सबका प्रिय होनेकी कोई सनक इन महामहिमको है नहीं–यह आप स्मरण रखिये।

यह भी स्मरण रखिये कि भक्तापराध–भक्तविरोध की लेशमात्र गन्ध श्रीकृष्णको आपेसे बाहर कर देती है। 'कोई मेरे अपनेका विरोध करता है।'

उसने क्यों विरोध किया, दोष दोनोंमें किसका–यह सब कुछ नहीं। दोष भले सब भक्तका ही हो, किन्तु वह भक्त है न। उसका विरोध करनेका साहस किसीने कैसे किया? अब लीजिये, ये अहीर–नन्दन अपने स्वभावपर उतर आये हैं और इनका प्रतिकार करनेकी शक्ति है किसी में?

बालिके समस्त उलाहनोंके विरुद्ध श्रीरामने जब फटकार दिया–

मम भुजबल आश्रित तेहि जानी।
मारा चहसि अधम अभिमानी।।

'तू इतना अधम! इतना अभिमान तेरा कि मेरा आश्रित है सुग्रीव,

यह जानकर भी उसे मारना चहता था !' बेचारे बालिके समीप इसका कोई उत्तर नहीं था।

अच्छा, सौभरि ऋषिका क्या दोष था ? वे वृन्दावनके यमुनाके समीप ह्रदमें तप करते थे जलमें डूबे रहकर। स्वाभाविक है कि प्राणी जहाँ रहता है–अपने आसपास के प्राणियोंसे उसे सहानुभूति हो जाती है। ऋषि–मुनि तो क्या, साधारण सत्पुरुष भी चाहते हैं कि उनके आसपास कोई किस्री को कष्ट न दें। कोई आखेट न करें।

गरुड़ आये और उन्होंने सौभरिके तपोह्रदसे सबसे बड़ी मछली पकड़ ली। ऋषि सौभरिने मना किया। माना कि गरुड़ भूखे बहुत थे, किन्तु दो–चार क्षण भी वे क्षुधा सह नहीं सकते थे ? उनका वेग तो वायुसे भी तीव्र है। संसारमें और कहीं मछली–कछुए थे ही नहीं ? लेकिन गरुड़ ठहरे सर्वेश्वर श्रीनारायण के वाहन।वे क्यों किसी की सुनने लगे ? उन्होंने वहीं उस मत्स्यको उदरस्थ किया।

'यदि गरुड़ यहाँ कभी फिर आकर कोई मछली पकड़ेगा तो तत्काल प्राणहीन हो जायेगा ।' ऋषि सौभरिने शाप दे दिया।

कोई दोष है इसमें ऋषिका ? कहीं क्रोध है इसमें । गरुड़का कुछ बिगाड़ा उन्होंने ? यह शाप तो केवल इस अपने तपोवनको सुरक्षित करनेके लिए ही है न या और कुछ ?

लेकिन इस अहीरके लड़केका कोई क्या करे। 'गरुड़ मेरे और इस तपस्वीका इतना साहस कि जानबूझकर गरुड़को, मेरे आश्रितको शाप देगा।

लो, गोपकुमार अपने स्वाभावपर उतर आया। 'तुम तपके बलसे गरुड़को शाप दोगे ? तपके बल से मछलियोंकी रक्षा करोगे ? इस ह्रदमें गरुड़ को भोजन नहीं मिलेगा और मछलियाँ पालोगे तुम ? मैं तुम्हारे तप और तुम्हारी मछलियोंको देखता हूँ।'

गरुड़ने शापका कुछ बुरा नहीं माना था। गरुड़ने कुछ नहीं कहा अपने आराध्यसे किन्तु गरुड़ कहें–इसकी आवश्यकता ? उनका आराध्य जो अपनोंको अपनी दृष्टि से कभी ओझल नहीं करता। अब जब कभी कुछ करनेको उतर आया–किसीका तप–किसीकी शक्ति उसे रोक लेगी ?

जिन मछलियोंकी रक्षा की सौभरिने, उन्हींकी क्रीड़ाने उनको तपोभ्रष्ट किया। जलमें डूबे रहकर तप करते थे सो जाकर राजा मान्धाताकी पचास कन्याओंसे विवाह किया उन्होंने और बाबाजी बच्चे पालनेमें लग गये।

सौभरि–ह्रदमें आया कालियनाग। जलमें मछलियाँ या अन्य जल–जीव तो क्या बचते, ह्रदके ऊपरसे उड़नेवाले पक्षी तक कालियके विषकी गन्धसे मूर्छित होकर गिरते और मर जाते। जिस ह्रदको सौभरि जलजीवोंके लिए निरापद करने चले थे, वह नभचरों तकके लिए परमापद बना दिया गया। यह सब हुआ सौभरिके साथ और गरुड़ने भी कुछ किया था–यह देखनेवाला कोई नहीं।

*　　　　*　　　　*

सनकादि कुमार भगवान नारायणके दर्शन करनें बैकुण्ठ गये। बैकुण्ठमें भी रोक–टोक हो तो वह अभयधाम कैसा ? लेकिन जय–विजयने बेत फटकार दिया। कुमारोंको क्रोध आया, उन्होंने शाप दे दिया–'तुम नारायणके द्वारपाल होकर भी रोक–टोक करते हो। उद्दण्ड व्यवहार करते
हो ! जाओ असुर हो जाओ !'

भगवान नारायण स्वयं द्वार तक आये। उन्होंने कुमारोंसे क्षमा मांगी। उनके शापका अनुमोदन कर दिया। सीधी दृष्टिसे बहुत मर्यादापूर्ण घटना दीखती है। लेकिन तनिक विश्लेषण करके देखिये।

'जय–विजयका क्या बिगड़ता ?' उनका कुछ बिगड़ा नहीं, क्योंकि

एक बार जो श्रीहरिका हो गया, उसका त्रिकालमें कोई कुछ बिगाड़ नहीं सकता, उसका कभी कुछ बिगड़नेवाला है नहीं। जय–विजय तीन जन्म असुर हुए तो त्रिलोकीके मूर्धन्य रहे। वे सुरोंके भी सेव्य बने रहे और तीनों जन्मोंमें अपने आराध्यके हाथों मरे।

जय–विजय जब हिरण्यकशिपु–हिरण्याक्ष हुए, जब रावण–कुम्भकर्ण हुए, जब शिशुपाल–दन्तवक्र हुए–कौन सा पुण्य किया उन्होंने ? देवता, ब्राह्मणोंके शत्रु रहे थे। पर–पीड़न, धर्मद्रोह, अन्याय, अत्याचार करनेमें कुछ उठा रक्खा उन्होंने ? दूसरा कोई जीव उनके कर्मोंका शतांश अपकर्म भी करे–महारौरवमें भी उसे स्थान मिलेगा ? लेकिन किसी अन्याय–अधर्मने कुछ बिगाड़ा उनका ?

यह अहीर पुत्र–यह इतना ही जानता है कि एक बार जो कह दे–'मैं तम्हारा वह इसका हो गया और तब–

'अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम।'

मर्यादा–पुरुषोत्तम बनकर आनेपर भी कितने दृढ़ स्वर में घोषणा करते हैं " जो एक बार भी शरणमें आकर कह देता है–'मैं आपका' उसे मैं सम्पूर्ण प्राणियोंसे निर्भय कर देता हूँ। यह तो मेरा व्रत है।"

उसने क्या किया, कैसा है वह, आगे क्या करेगा, कैसे रहेगा, ऐसी कोई शर्त या खोजबीन नहीं। उसने कहा–'मैं तुम्हारा।'

आप कहते हैं–'इस क्षणसे तुम त्रिलोकीमें निर्भय।' यह है आपका व्रत। अब कोई उसको भय देने चले तो आश्रय ढूँढे। उसके लिए महाभय–उसकी रक्षा भला अब कौन कर लेगा ?

हाँ–सनकादि कुमार भी परमभक्त थे, यही कुशल थी। पता नहीं, कोई अभक्त होता तो उसका क्या होता, किन्तु जय–विजय द्वारा फटकारे जाने पर उन्होंने उन द्वारपालोंकी प्रार्थना नहीं की, उनको शाप दे दिया।

क्या परिणाम हुआ ?

'मेरे द्वारपालोंकी स्तुति नहीं कर सकते तो असुरों की स्तुति करो।' यह विधान उनके साथ भी हो गया। जय–विजय हुए हिरण्यकशिपु–हिरण्याक्ष। जय–विजय बैकुण्ठमें भगवत्पार्षद थे। उनकी स्तुति–वह भी दो–चार क्षणकी, किन्तु हिरण्यकशिपुकी राज्यसभामें उस दैत्येश्वर की स्तुति तो नित्य–नित्य और सहस्त्रों वर्षोंतक करनी पड़ी। सनकादिके कारण उनके सब भाइयोंको–ब्रह्माजीके सब पुत्रोंको, प्रजापतियों और नारदजीको भी दैत्यराजकी स्तुति करनी पड़ी।

यह स्वभाव है गोपका और श्याम गोपकुमार है। आप उसके हैं तो आपकी चित्त और पट दोनों। आप सर्वत्र निर्भय और आप उसके नहीं है तो आपकी बुराई तो बुराई है ही, अच्छायी भी अच्छायी बननेमें सफल तभी तक है–जब तक आप उसके किसी से उलझनेसे बचे रहें। अन्यथा बड़े–बड़े उसके अपनोंके आगे सिर उठाते ही पटकनी खा जांते हैं ।

बुद्धिमानी तो इसमें है कि आप इस गोपकिशोरके हो रहें।

(3)

मैया यशोदाका लाल बड़ा संकोची है। लेकिन नटखट इतना है कि अपना संकोच भी अपने नटखटपनके आवरणमें ढक लेता है। नटखटपन श्रीरघुनाथमें नहीं है, इसलिए उनका नाम ही एक मित्र ने 'संकोचीनाथ' रख दिया। स्वभाव तो बदलना नहीं रूप बदल लेनेसे। गोस्वामी तुलसीदासजीने कहा–

सकुचत सकृत प्रनाम किये ते।

कोई एक बार मस्तक झुका देता है आपको तो आप संकोचसे गड़ जाते हैं कि 'मैं तो इसका कोई बड़ा, हित नहीं कर सका।' बड़ा हित–'अब तो जितना बड़ा उसकी दृष्टि भी उतनी बड़ी। उसकी दृष्टिमें हित भी वैसा।

कंगाल किसीको पाँच पैसे दे दे तो अपनी दृष्टिमें बड़ा दान........पाँच पैसे का दान किया उसने और करोड़पति पाँच सहस्ररुपये भी दे दे तो सोचेगा—'केवल पाँच सहस्र ही तो।' अब जो अनन्त ऐश्वर्य–सिन्धु हैं, उनकी दृष्टि में 'बड़ा हित–बड़ा कहाँसे आये कुछ उनकी दृष्टि में।

जो सम्पति दससीस अरपि करि रावन सिव पहँ लीन्ही।
सो सम्पदा विभीषण कहँ अति सकुच सहित हरि दीन्ही।।

(विनयपत्रिका)

अपने दस मस्तक काटकर हवन कर दिये रावणने और तब उसे जो सम्पत्ति, जो ऐश्वर्य वरदानके रूप में प्राप्त हुआ, वही ऐश्वर्य विभीषणको बड़े ही संकोचसे श्रीरामने दिया। बड़ा संकोच—यह नन्ही सम्पत्ति मैं क्या दे रहा हूँ।'

*　　　　*　　　　*

सुदामा मित्र थे श्रीकृष्णचन्द्रके। गुरुगृहके सहपाठी थे। पत्नीनें बड़े आग्रहसे भेजा था। उन्हें द्वारका। सुदामाकी दशा अत्यन्त दयनीय थी—

धोती फटी–सी, लटी दुपटी,
नहि पायँ उपानह कौ कछु सामा।

कटिमें मैली, चिथड़े–सी धोती और कंधे पर उससे भी मैला–फटा उत्तरीय। अत्यन्त दुर्बल शरीर। एक–एक हडड्डी और नस दीख रही। नंगे पैर वे वह भी विवाइयों से चिथड़े हो रहे।

समाचार मिला—

पूँछत दीन दयाल को धाम, बतावत आपनो नाम सुद्रामा।

'सुदामा !' श्रीद्वारकाधीश अन्तःपुरमें महारानी रुक्मिणीके सदनमें पर्यङ्कपर विराजमान थे और वे निखिल ऐश्वर्यमयी व्यजन कर रही थीं। 'सुदामा आये हैं।' इतना सुना और दौड़े—कहीं पटुका गिरा और कहीं छूटा

मुकट। दौड़कर हृदयसे लगा लिया। भीतर भवन में लाकर उसी पर्यङ्कपर बैठाया और स्वयं नीचे चरण धोने बैठे सुदामाके। जिनके चरणोंमें सृष्टिकर्ता ब्रह्मा और देवेन्द्र दूरसे मस्तक रखते हैं, वे स्वयं ब्राह्मणके चरण हाथमें लेकर धोने बैठे। सुदामा के चरणोंपर दृष्टि गयी और कमललोचन विह्वल हो गये।

'ऐसो बेहाल बेवाइनसै मग कंटक जाल गड़े पुनि जोये।
हाय महादुख पाये सखा ! तुम आये इतै न, कितै दिन खोये।।
देखि सुदामाकी दीन दसा करुना करि कै करुनानिधि रोये।
पानि परातकौ हाथ छुयौ नहिं नैननिके जल तें पग धोये।।'

वह स्वागत, वह सत्कार, वह आत्मीयता कि सेवक सचिव ही नहीं, अपने स्वामीके स्वभावको जाननेवाली राजमहिषियाँ चकित–थकित रह गयीं।

सुदामाको पता नहीं और उनके लाये चिउरोंके दाने चबानेके बहाने उन्हें ऐश्वर्य देने लगे तो स्वयं महालक्ष्मीरूपा महारानी रुक्मणी घवरा गयीं कि ये आज करने क्या जा रहे हैं।' एक मुट्ठी चिउरे चबाकर जब दूसरी मुट्ठी श्यामने भरी, तब उन्होंने हाथ पकड़ लिया–'नाथ ! बहुत हो गया। इस लोक और परलोकका सम्पूर्ण ऐश्वर्य तो आप एक मुट्ठीके साथ दे चुके।'

अपने स्वामीके संकोची स्वभावको जानने वाली महारानी ने वैसा ही अभिनय किया । उन्होंने भी कहा–'अकेले ही आप सब ग्रहण कर लेना चाहते हैं ? आपके इन महाभाग मित्र का यह अमृतोपहार मुझे और मेरी बहिनों को भी तो मिलना चाहिए। हमें तो एक–एक दाना ही अब अपने भागमें मिलेगा। आप इससे भी हमें क्यों वन्चित करते हैं।'

यह सब स्वागत–सत्कार, सब अद्भुत व्यवहार। किन्तु जब सुदामाको विदा करने का अवसर आया तब क्या हुआ ?

नटखटपन छोड़ दे तो कन्हाई ही काहेका। आप सुदामासे कहते हैं–'भैया ! मार्ग लम्बा है और मार्गमें दस्युओंका भय भी है। यदि ये रत्नाभरण–..................... ।

सुदामा का मुक्तामाला, रत्नाङ्गद आपने अपने हाथसे पहिनाये थे। अब यह कहते तो संकोच लगता है कि 'यह प्रसाद देते जाइये। इन्हें धारण करके मैं अपनेको परिपूत भय अनुभव करूँगा।' मार्ग लम्बा है मार्गमें दस्सुओं का भय है" कोई पूछे इनसे कि द्वारकामें रथ, अश्व, हाथियोंका अभाव हो गया है ? मार्ग लम्बा है तो आप ब्राह्मणको पैदल भेज क्यों रहे हैं ?

मार्गमें दस्युओंका भय है तो आपका चक्र किस दिन काम आयेगा ? चक्र निष्प्रभ हो गया है या उसने आपका आदेश–पालन बन्द कर दिया है ? आपका नाम लेकर मनुष्य तीनों लोकोंमें निर्भय हो जाता है । भयके भी षद भयकम्पित होते हैं आपके चरणाश्रितके सम्मुख और आप अपने सखा को मार्गमें दस्युओंका भय बताते हैं ?

किन्तु किसीको यह प्रकट करनेमें संकोच लगता है कि–'मैंने मित्र को कुछ दिया है। मैंने मित्रकी कुछ सेवा की।' इसका क्या उपाय ? सुदामा को लगना नहीं चाहिए, कम–से–कम सम्मुख नहीं लगना चाहिए कि श्रीकृष्णने उनको कुछ दिया, उनकी कुछ सेवा की। श्यामको लगता है कि मित्रके नेत्रमें कृतज्ञताके भाव आयेंगे तो उसे वह सह नहीं सकेगा । इसलिए यह सब नटखटपन–अपने संकोचको छिपानेके लिए यह सब लीला–चापल्य है।

सुदामाने सोने–जवाहरातके गहने उतार दिये चुपचाप। उनको न इनका मोह था न लोभ। अकिंन्चन, बीतराग ब्राह्मणके लिए ये अनुपयोगी थे। सखाने स्नेहसे पहिनाये थे, इसलिए पहिने हुए थे। श्यामके स्नेहका तिरस्कार कैसे करते; किन्तु उतारनेमें लगा–'मोहनने बड़ी कृपा की। इस क्षीणकायापर

इतना भार मैं कैसे ढोता।'

'अच्छा ! आप यह अमूल्य उत्तरीय एवं धोती तो लेते ही जायँ।' हँसकर श्रीकृष्णने कहा। इस चपलको सुदामाकी पहिनी धोती और उत्तरीयका भी लोभ है। इन्हें तो यह मस्तकपर लपेटेगा और प्राणके समान सँभाल कर रखेगा। मित्र के धारण किए वस्त्र........... किन्तु इसके कहनेके ढंगको तो देखिये।

'अरे नहीं ! मैं दरिद्र ब्राह्मण कहाँ इनको पहिनकर अच्छा लगता हूँ।' सुदामाने अपनी मैली फटी धोती लपेटते हुए द्वारकाके वस्त्र उतारते–उतारते कहा–चलना पैदल' माँगना भीख और ये कपड़े ! कोई दो मुट्ठी अन्न देनेवाला भी होगा तो इन वस्त्रोंको देखकर मुख बिचका लेगा।'

अब सुदामाजी को कहाँ पता है कि उनके इन नटखट मित्र ने उन्हें ऐसा बना दिया है कि धनाध्यक्ष कुबेर भी उनके द्वार भिक्षा माँगे। द्वारकासे तो सुदामाको श्रीकृष्णने उसी रूपमें विदा किया, जिस रूपमें विदा किया, जिस रूपमें वे द्वारका आये थे । मार्गके लिये दो मुट्ठी चने भी सुदामा को नहीं दिये गए।

घर पहुँचे सुदामा। अपने ग्राम से दूर ही थे कि चौंके–'यह नगर ! ये कनक–शिखर सौध ! कहाँ आ गया मैं ? न ग्राम है और न झोंपडी।' वहाँ तो दूसरी द्वारका–सुदामापुरी बस चुकी थी। वह सुदामापुरी, जिसके वैभवके सम्मुख अमरावती भी कंगालकी झोंपड़ी लगे।

नन्दब्रुवाणो दिशते समक्षं
याचिष्णवे भूर्यपि भूरिभोजः।
पर्जन्वत् तत्स्वयमीक्षमाणो
दाशर्हकाणामृषभः सखा मे ।।

(श्रीमद्भागवत)

सुदामा नगरमें आये और अपने महासदनमें पहुँचे। सब कुछ देखा–समझा और गद्‌गदकण्ठ बोले–'यह सात्वत–शिरोमणि, यदुवंशविभूषण मेरा मित्र मेघोके समान स्वयं ही आवश्यकता–पीड़ितोंको देख लेता है और उसे देने लगता है तो देते थकता नहीं, किन्तु निश्चय अद्‌भुत स्वभाव है इसका। मैंने मुँह खोलकर कुछ माँगा नहीं तो इसने सामने कुछ दिया भी नहीं। इसे लगा होगा–मित्र को सामने कुछ देकर अपने से हीन, उपकृत बनानेकी तुच्छता नहीं करनी चाहिए। इससे मित्र को संकोच होगा। इससे मित्र को तो यही लगना चाहिये कि मैने दो मुट्‌ठी चिउरे ही सही–कृष्णको कुछ दिया ही है। भले श्याम द्वारकाधीश हो, अनन्त ऐश्वर्यका स्वामी हो, मैंने उससे कुछ लिया नहीं है।'

मित्रको संकोच होता या नहीं होता, कन्हाईको स्वयं जो महासंकोच हो रहा था। यह परम मित्रवत्सल ! मित्रको उपकृत करने का विचार ही इसे संकुचित करता है। मित्र गौरवान्वित रहें ! उसका मस्तक ऊँचा रहे। मोहनको सदा यही अभीष्ट रहा है।

— — —

प्रति उपकार करउँ का तोरा।
सनमुख होइ न सकत मन मोरा।।

मर्यादापुरुषोत्त्म श्री हनुमानजी से कहते हैं–'हनुमान ! तुम्हारे उपकारका बदला तो मैं क्या चुका सकता हूँ, मेरा मन भी संकोचके मारे तम्हारे सामने नहीं होता। मन भी तुम्हारे सामने लज्जित–संकुचित रहता है।'

यह बात केवल हनुमानजीके सम्बन्ध में नहीं है। सुरासुरजयी रावणपर विजय प्राप्त करके अयोध्या पहुँचे तो वानर–भालुओंका परिचय देते गुरुदेवसे कहते हैं–

ये सब सखा सुनहु मुनि मेरे। भए समर सागर कहँ बेरे ।।

मर्यादापुरुषोत्तम झूठ नहीं बोलेंगे और वह भी अपने कुलगुरु महर्षि वशिष्ठसे। अपने हृदयमें वे जैसा अनुभव करते हैं, वैसा कह रहे हैं–'गुरुदेव! ये सब मेरे सखा हैं । लंकाका युद्ध तो समुद्र के समान अपार था। मैं तो उसमें डूब ही गया होता; किन्तु ये सब मेरे लिए जहाज बन गये। इन्होंने मुझे उस समर–सागरमें डूब जाने से बचा लिया। विजयी तो इन्होंने बनाया मुझे।'

इन संकोचीनाथकी यह अनुभूति–यह स्वभाव है इनका। इन्होंने कुछ हित किया, कुछ कृपा की–जैसे कभी इनको लगता ही नहीं है। ये तो कृपा करके भी संकुचित ही होते हैं।

— — —

बड़ा सुकुमार, बड़ा मनोहर, बड़ा सौम्य शील है–इन मेघसुन्दरका व्रजमें, मथुरामें, द्वारकामें और अयोध्यामें भी; किन्तु लोकभयंकर नृसिंहरूपमें आप इनको क्या कहेंगे ? वहाँ भी ये सौम्यशील हैं ?

भले दिशाएँ नृसिंहकी हुंकृतिसे काँपती हों । भले ब्रह्मादि देवताओंके प्राण सूखते हों इन उग्रतेजाकी कराल भृकुटि देखकर और भले गम्भीर गुर्राहट करके समीप आती लक्ष्मीजीको ये भगा दें; किन्तु अपने स्वभावका क्या करें ? स्वभाव तो वही संकोचीनाथका है।

प्रहलादने आकर चरणोंमें मस्तष्क झुकाया । नृसिंहने उठकर गोदमें बैठा लिया। दुलारा, जीभसे चाटने लगे । पुचकारा और बोले–'बेटा! बड़ा सुकुमार है तू। बहुत अत्याचार सहने पड़े तुझे। बड़ा निष्ठुर निकला मैं। बड़ी देर हुई मुझे प्रकट होनेमें। मुझे तू क्षमा कर दे।'

क्षन्तव्यमङ्ग यदि मे समये विलम्बः।

जिसकी स्तुति भी समीप आकर करनेका साहस सुरोंमें नहीं हुआ, जिनके पदोंमें प्रणिपात करने लक्ष्मीजी नहीं आ सकीं, वह गद्‌गद कण्ठ, साश्रु नेत्र बालक प्रहलादसे कह रहा था–'पुत्र ! मुझे क्षमा कर दे !'

बड़ा स्नेह, बड़ा वात्सल्य ! मुख से निकल गया–'वत्स ! माँग तो सही, क्या लेगा तू ?

प्रहलादने कहा–'स्वामी ! आप मुझे प्रलोभन देते हैं ? मैं कामनाओंसे पहिले संत्रस्त हूँ। मेरे मनमें कभी कोई कामना न उठे, यही वरदान दें आप।'

भगवान नृसिँह उल्लसित हो उठे–'पुत्र ! तूने अपने इस अकिञ्चन स्वामीकी लज्जा रख ली। नृसिंह तुझे क्या दे सकता था। त्रिभुवनका सिंहासन, त्रिलोकीका ऐश्वर्य तो तेरे पिताका ही है। वह तो तेरा स्वत्व है। मैं तुझे और क्या दे सकता हूँ।'

'अपने श्रीचरणोंकी भक्ति दीजिये ! प्रहलादको कहाँ इस ऐश्वर्यका लोभ था। उनको कहाँ अमरावतीके सिंहासनपर बैठना था ; किन्तु यह तो उनके स्वामीका स्वभाव है कि अपने जनको सब कुछ देकर भी अनुभव करते हैं–'इसे कुछ तो नहीं दिया।'

*　　　　　　*　　　　　　*

आपसे धीरेसे–एकान्त सलाहकी भाँति एक बात कहूँ ?

श्रीनन्दबाबाका लाला बहुत संकोची है। इस सुकुमारसे कुछ माँगकर इसे और अधिक संकोच में मत डालिये। आप कुछ माँगेगे, कुछ प्रा:र्थना करेंगे तो बड़ा दु:ख होगा। इसे लगेगा–'मैं इतना अयोग्य–इतना प्रमत्त, इतना कृपा–कृपण हूँ कि मेरे स्वजनोंको कहना पड़ता है–प्रार्थना करनी पड़ती है।'

इस आनन्दकन्दसे प्रमाद नहीं होता–यह आप जानते हैं। यह आपके मङ्गल–विधानमें लगा रहता है–यह भी आप समझते हैं। ऐसी

अवस्थामें कुछ अपनी ओरसे कहकर, माँगकर इसे संकुचित करना क्या उचित हैं ?

स्याम संकोची प्रेमका।

इसलिए इस परमसंकोचीको संकोचमें मत डालिये। इसे तो उन्मुक्त हृदयसे प्यार–आशीर्वाद दीजिये। मोहनको निःसंकोच करेंगे तो आप जीवनमें, जगतमें और सर्वत्र संकोचहीन, सम्पूर्ण संतुष्ट रहेंगे–यह सर्वथा सुनिश्चित है।

(4)

श्रुति कहती है–'रसो वै सः। " वह रस–स्वरूप–आनन्दस्वरूप है।'

शास्त्र और सत्पुरुष कहते हैं–'वह निखिल लोकमहेश्वर, आत्माराम, आत्मकाम हैं।'

इतना तो अपनेको भी पता है–यह श्रीव्रजेन्द्रका अत्यन्त लाड़ला इकलौता लाल है। अतः इसे कोई क्या देगा। इसको भला चाहिये ही क्या और सम्पूर्ण सृष्टिमें तथा उससे भी परे कुछ हो तो–कहीं ऐसा क्या है, जो कन्हाईके लिए दुर्लभ–स्पृहणीय हो।

लेकिन अद्‌भुत स्वभाव है इस वनमालीका। स्वयं मित्रोंके कण्ठमें मणिमाला पहिनायेगा तो कहेगा–'मैं अब तेरे गलेमें ये पत्थर लटका रहा हूँ। तू इनका भार ढो।'

कोई सखा एक नन्हा पुष्प, एक गुन्जा, एक आम्रकिसलय ले आये तो उसे दौड़कर लेने आयेगा। उसे कभी अपनी घुँघराली काली अलकोंमें खोंस लेगा, कभी भुजा या कण्ठमें अथवा कानेपर रखकर नाचेगा। घरपर हुआ तो बाबाको, मैयाको और गोपगोपियोंको, वनमें हुआ तो दाऊ दादाको, दूसरे सखाओंको बार–बार दिखलायेगा, फुदकेगा–'कितना सुन्दर ! कितना उत्तम उपहार है यह मेरे सखाका।'

गोपियाँ तनिक–सी छाछ, जरा–सा माखन देती हैं और कन्हाई उनके आगे–पीछे नाचता घूमता है। नन्दसदनमें दूध, दही, माखनका अभाव है क्या ? किन्तु यह तो मोहनका स्वभाव है–अपनोंकी वस्तु तो वह छीनकर, चुराकर भी ले लेता है। कोई बालक उसके श्रीअङ्गपर गेरू या खड़ियासे कुछ अटपटी रेखा खींच देता है तो वह देरतक उन रेखाओंको देखता है, दूसरोंको दिखाता है–'कितना उत्तम चित्र है।'

आप क्या कहते हैं ?–'कृष्ण बालक है। बच्चा है, भोला है।' बड़ा होकर ही इसका स्वभाव कहाँ परिवर्तित हो गया।

सुदामा क्या लेकर गये थे द्वारका ? एक मुट्ठी चिउड़े और वही भी दूसरोंके घरोंसे माँगे हुए। कोई लाल, कोई श्वेत, कोई मोटा, कोई पतला, कोई छोटे चावलका–कोई लम्बे चाँवल का। चिउड़े भी एक जैसे नहीं। जैसे सुदामाकी दरिद्रताका वे साकार रूप हों। वे चिउड़ें बँधे थे गन्दे, मैले, फटे चिथड़े में।

द्वारका का वैभव देखकर सुदामाको साहस नहीं हुआ था कि उन चिउड़ेका उपहार द्वारकाधीशको अर्पित करें। वे उसे अपनी बगलमें दबाये–दुबकाये सिकुड़े जा रहे थे; किन्तु कन्हाई कहीं ऐसे मानता है। इसने पूछ लिया–'भाभीने मेरे लिए क्या उपहार भेजा है ?"

क्या कहते सुदामा ? उन्होंने मस्तक झुका लिया। उनका मस्तक झुका और श्रीकृष्णका हाथ बढ़ा–'यह आप बगलमें क्या दबकाये हैं ?"

सुदामाने और दबायी पोटली। जिसे श्रीकृष्ण खींचना चाहे, कोई दबा सकेगा, रोक सकेगा कोई ? मोहनने खींचा। जीर्ण वस्त्र फट गया। चिउड़े नीचे पादपीठपर और भूमिपर बिखर गये।

'ओह ! यह भेजा है भाभीने उपहार ! इतने उत्तम चिउड़े !' जैसे महीनोंका अकालका मारा क्षुधातुर अन्नपर टूट पडे, उस आतुरतासे श्यामसुन्दर

पर्यङ्कसे भूमिपर उतरा और उन चिउड़ोंको समेटने लगा।

पादपीठपर, भूमिपर–जहाँ अपने ही नहीं, सेवकोंतक के पैर पड़ते हैं, वहाँ गिरे–बिखरे चिउड़े त्रिभुवनका स्वामी कंगालके समान आतुरतासे समेट रहा था। समेट लेनेतकका धैर्य भी पूरा नहीं था इसमें। एक मुट्ठी समेट कर इसने मुखमें डाली–

तर्पन्त्यङ्ग मां विश्वमेते पृथुकतण्डुलाः।।

(श्रीमद्भा0 10–81–9)

'प्यारे मित्र' ये परम स्वादिष्ट तुम्हारे चिउड़े मुझे–मुझ विश्वरूपको तृप्त कर रहे हैं।' आप इतने मुग्ध, इतने प्रभावित हैं कि सम्पूर्ण समष्टि को उन चिउड़ोंका भाग दे रहे हैं–मुझ विश्वरूपको ये तृप्त कर दे रहे हैं।'

साधारण व्यक्ति भी स्थिर, स्वच्छ स्थानपर बैठकर भोजन करता है। खड़े–खड़े, चलते–फिरते, अस्त–व्यस्त भोजन करना सामान्य शिष्टताके भी विपरीत है। शास्त्रकी मर्यादाके विपरीत है ही; किन्तु जब कोई अत्यन्त आतुर हो जाय–शिष्टता, मर्यादा उसे स्मरण रहती है ?

न हाथ धोया, न पैर, भूमिपर बिखरे अपवित्र चिंउड़ोंको समेटकर मुखमें डाल लिया और उन्हें चबाते–चबाते, फिर समेटने लगे। दूसरी मुट्ठी भर ली।

एक मुट्ठी 'विश्वरूप'को तृप्त कर चुकी। विश्वका सम्पूर्ण वैभव सुदामाका हो चुका। अब दूसरी मुट्ठी ? महारानी रूक्मणीजी ने हाथ पकड़ लिया। मित्रका लाया यह उपहार उनके आराध्यको इतना स्वादिष्ट लगा है तो उसका एक कण प्रसाद उन्हें भी तो चाहिए। उन्हें कहाँ भरी मुट्ठी मिलती है ? सोलह सहस्त्र एक सौ आठमें बँटनेपर एक कण ही तो उनके भागमें आयेगा ।

* * *

पाण्डवोंके दूत बनकर गये थे हस्तिनापुर। धृतराष्ट्रकी प्रेरणासे

दुर्योधनने स्वागतकी वह प्रस्तुति की थी, जो उसने कभी किसीके लिए नहीं की। दुर्योधन पराया नहीं था । अन्ततः उसकी पुत्री लक्ष्मणाका विवाह हुआ था श्रीकृष्ण–पुत्र साम्बके साथ। उसे अधिकार था समधीका सत्कार करने का। किन्तु जब उसने भोजन–विश्रामकी प्रार्थना की, आपने दो टूक कह दिया–'इस अतिथ्यकी प्रस्तुतिके लिए धन्यवाद !

दुर्योधन–'धन्यवादकी बात क्यों ? यह तो कर्त्तव्य है हमारा । आप पधारें !

श्रीकृष्ण–'दुर्योधन ! मनुष्य यदि क्षुधासे मर रहा हो तो कहीं भोजन कर लेता है, अन्यथा वहाँ भोजन करता है, जहाँ प्रेम हो। प्रेम मेरे प्रति आपमें नहीं है और क्षुधासे मर मैं नहीं रहा हूँ।'

श्रीकृष्ण भूखे नहीं थे, ऐसी बात नहीं है। दूरसे आये थे। पता नहीं मार्गमें अल्पाहार भी किया था या नहीं । बहुत करके नहीं किया था। डटकर भूख लगी थी; किन्तु दुर्योधनका अन्न नहीं खाना था, इसलिए नहीं खाया। अन्यथा इतनी प्रतीक्षा नहीं कर सके कि वहीं उपस्थित विदुरजीको साथ लेकर उनके घर जाते। विदुरजी लग गये धृतराष्ट्रको समझानेमें और श्रीकृष्णका रथ विदुर के घर की ओर दौड़ चला।

'चाची ! चाची ! बहुत भूखा हूँ।' द्वारपर रथसे कूदे और वहीं से ही पुकार लगानी प्रारम्भ कर दी।

श्यामका स्वर भी कहीं छिपता है। वह मेघ–गम्भीर स्वर श्रवणों में पड़ा और विदुर–पत्नी भूल ही गयीं कि वे स्नान करके उठी हैं। वस्त्र उन्होंने अभी पहने ही नहीं हैं। वे वैसे ही दौड़ी, द्वार खोला। उनकी अवस्था देखते ही श्रीकृष्णने अपना उत्तरीय उनके शरीरपर डाल दिया।

चाची बहुत भूखा हूँ।' पद–वन्दन करते हुए भी एक ही रट।

विदुर–पत्नीने लाकर आसनपर बैठाया। घर में तत्काल और कुछ

तो था नहीं, पके केले थे। उठा लायी और सम्मुख बैठकर खिलाने लगी। वे भाव–विह्वला, उन्हें अपने शरीरकी ही सुधि नहीं तो यह कैसे पता लगता कि वे केलेका गूदा फेंकती जा रही हैं और छिलके श्रीकृष्णको देती जा रही हैं और छिलके श्रीकृष्णको देती जा रही हैं।

'बड़े मधुर ! बहुत स्वादिष्ट हैं ये ! श्रीकृष्ण बडे उल्लाससे चबाये चले जा रहे हैं वे छिलके।

श्यामसुन्दर घर गये हैं, यह पता चलनेपर विदुरजीको भी पहुँचने की त्वरा तो हुई ही। महाराज धृतराष्ट्रको कहकर वे लगभग पीछे–पीछे ही आये। द्वारसे घरमें प्रवेश करते ही जो दृश्य देखा–दो क्षणको चरण ठिठक गये । समीप आकर पत्नीको झिड़क दिया–'तू श्रीकृष्णको खिला क्या रही है ?–दे केले मुझे और जाकर वस्त्र पहन।'

विदुर–पत्नीको अब शरीरका ध्यान आया। केले विदुरजी के हाथमें देकर वे संकोचसे वस्त्र वदलने चली गयीं। विदुरजीने केला छीलकर गूदेवाला भाग दिया श्रीकृष्णचन्द्रके करमें।

'चाचाजी ! केला मीठा तो है; किन्तु यह स्वाद नहीं जो छिलकोंमें था ।'–श्रीकृष्णने केले खाते हुए कहा।

'मुझमें वह प्रेम जो नहीं है जो इस पगली में था।' विदुर के नेत्र भर आये।

* * *

गोस्वामी तुलसीदासजीने भी श्रीरघुनाथकी रुचिका वर्णन करते हुए कहा है–

घर गुरगृह प्रिय सदन सासुरें भइ जब जहँ पहुनाई।
तब तहँ कहि सबरीके फलनिकी रुचि माधुरी न पाई।।

अयोध्या के महाराजाधिराजका अपना राजभवन ही छोटा नहीं था। उमड़ते हुए अगाध स्नेहसागर की मूर्तियाँ कौसल्या, सुमित्रा आदि माताएँ और भाई; फिर अवधका कौन अभागा होगा जो अपने घरमें अपने सम्राट्का आतिथ्य करनेको उत्सुक न हो । अनेक बार भगवती अरुन्धती श्रीरघुनाथ को भाइयों समेत आमन्त्रित करती थीं । कभी आमन्त्रण आता था कैकयनरेशका, कभी सुमित्र–देशका और कभी दक्षिण कोसलका। मित्र भी तो थोड़े नहीं थे। जनकपुरका तो स्वत्व ठहरा अवधके कुमारों एवं अपनी कन्याओंको बार–बार बुलाकर उनका सत्कार करनेका ।

श्रीरघुनाथको एक ही बात, एक ही धुन––वैसे तो परम संकोच–निधान हैं । जो सम्मुख आया, बड़े प्रेमसे आरोगेंगे। स्वाद जैसे श्रीरामको पता नहीं; किन्तु जब कोई बार–बार आग्रह करके पूछे–'भोजन कैसा लगा? खूब स्वादिष्ट बना या नहीं ?

मर्यादा–पुरुषोत्तम असत्य तो बोल नहीं सकते । वे कहते हैं–भोजन बहुत स्वादिष्ट, बहुत मधुर, बहुत प्रिय लगा; किन्तु........... ।

'किन्तु क्या ?'

'वनमें माता शबरीने बेर खिलाये थे। जो स्वाद, जो माधुर्य उन बेरोंमें मुझे मिला था, वह माधुर्य तो फिर कहीं मिला नहीं।'

आप जानते ही हैं कि वस्तुमें स्वाद नहीं होता। कोई पदार्थ स्वादिष्ट हुआ नहीं करता। स्वाद होता है रुचिमें । जिसकी जैसी रुचि, उसे वैसा पदार्थ स्वादिष्ट लगता है। कुछ लोगोंको भोजनमें मिर्च, मसाला, खटाई, न हो तो भोजन सर्वथा अस्वाद लगे। कुछको मिर्च असह्म लगती है। मेरे कई मित्र दूधमें अधिक चीनी चाहते हैं। अधिक चीनी पड़े तो दूध मुझे अप्रिय हो जाता है। मैं ऐसे लोगों को जानता हूँ। जो मीठा बहुत खाते हैं; किन्तु दूध में थोड़ी भी चीनी डालो तो वे दूध पी नहीं सकते । अब श्रीराम

या घनश्यामकी रुचि कैसी? इन्हें पदार्थ प्रिय नहीं लगते। पदार्थ मीठा है या खट्टा, कड़वा है या कसैला–यह इनकी रसना नहीं पहचानती। पदार्थ देने वालेके अन्तरमें प्रेम कितना है, इसके अनुसार इनकी जीभको वह पदार्थ प्रिय या अप्रिय, मधुर या कटु लगता है।

* * *

परमभक्ता करमाबाई अपने गोपाल लालको बड़े प्रातः खिचड़ीका भोग लगाया करती थी। स्नान–पूजन पीछे, पहिले उठते ही खिचड़ी चढ़ा देतीं। उनका भोला नन्हा गोपाल–इसे सबेरे–सबेरे ही भूख लग जाया करती है इसे भोग लगाकर तब निश्चिन्त मनसे स्नानादि करतीं वे। उनका शरीर श्रीवृन्दावनमें छूटा।

मुझे एक महात्माने बतलाया–'करमाबाईका शरीर छूटनेके कई दिन पीछेतक उनकी कुटियासे किसी बालक के रो–रोकर पुकारनेका स्वर पडोसियोंको सुनायी पड़ता रहा। बालक रो–रोकर पुकार था–'मैया! मैया री! मैं भूखा हूँ। मुझे खिचड़ी दे।'

मैया गोलोक पहुँच गयी, किन्तु वृन्दावन की उस कुटियामें मैया के हाथ की खिचड़ी का सवाद जो गोलोकके अधीश्वरकी रसनाको लगा तो उनकी सर्वज्ञता भूल गयी। उन्हें वह कुटिया खींच लेती थी और रोकर सर्वेश्वर, पूर्णकाम, आत्माराम उस खिचड़ीकी पुकार करता था।

* * *

तुलसीदलमात्रेण जलस्य चुलुकेन वा।
विक्रीणीते स्वमात्मानं भक्तेभ्यो भक्तवत्सलः॥

पदार्थकी मात्रा नहीं और पदार्थकी जाति नहीं–आप क्या दे रहे हैं और कितना दे रहे हैं, इसे नन्द–नन्दन के नेत्र नहीं देखते। इसे दीखता है आपके हृदयका प्रेम और यदि वह प्रेम आपमें है, श्याम अनन्त है न, इसे सब अनन्त ही देखता है।

एक दल तुलसीका–वह भी न सही, एक चुल्लू जल और उसका तो वह इतना महान, इतना मूल्यवान मानता है कि इसे सूझता नहीं कि उसके बदले क्या दे दे। उसके बदले वह अपने आपको भक्तोंके हाथ बेच देता है, सदासदाको भक्तका अनुचर बन जाता है।

यह रसिकशेखर स्वयं कहता है–

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त् प्रयच्छित।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रपतात्मनः ।।

(गीता 9–26)

पत्र–तुलसीदल,फूल, फल या जलमात्र–जो कुछ भी मेरा भक्त मुझे देता है, भक्तके उस उपहारको मैं खाता हूँ–केवल खाता ही नहीं, 'प्रयतात्मनः अश्नामि' बड़ी एकाग्रतासे, तन्मय होकर, बड़े स्वादसे रस ले–लेकर खाता हूँ।

धन्य हैं वे, जो कन्हाईको कुछ दे पाते हैं । भिक्षाके सही–सुदामाके समीप चार मुट्ठी चिउड़े तो थे अपने इस मयूरमुकुटी सखाको समर्पित करनेके लिए। अभाग्य तो यहाँ है कि वे भी नहीं है। भिक्षा माँगी नहीं जाती और जो कुछ है–मोहनका ही दिया है। उसीने जो स्वयं जुटाया............. ।

किन्तु मैं या आप ऐसी वस्तु पायेंगे कहाँ जो श्रीकृष्णकी न हो। 'कन्हाईके दानके बिना तो कुबेर भी कंगाल है। श्रीकृष्णको कहाँ स्मरण रहता है कि उसने किसे क्या दिया। उसीका पटुका उसीके कंधेसे उठाकर दो क्षण बाद सखा फिर उसके कंधेपर रख देते हैं तो यह पटुकेको छूकर, उठाकर देखता है–'सखाने कैसा सुन्दर पटुका दिया मुझे।'

'यह तो तेरा ही पटुका है।' कोई कह कर देख ले।

'कहाँ ! ' मोहन तत्काल अस्वीकार कर देगा–'मेरा पटुका इतना सुन्दर कहाँ था। यह तो मेरे मित्रका है–उसने दिया है मुझे।'

उसीकी वस्तुं उसे देनी है और यह मैया यशोदाका लाल इतना सरल है कि यह उसे आपका उपहार मानकर ही ग्रहण करेगा। इस उपहारको इतना–इतना बहुमूल्य मानेगा कि इसे कभी नहीं सूझेगा कि उपहार के बदले क्या–क्या कितना–कितना देनेपर प्रत्युपकार पूर्ण होगा।

एक दूर्वादल, एक किसलय, एक पुष्प, दो बूँद जल–कुछ भी; किन्तु प्रेमसे हृदयके सच्चे प्रेमसे दिया प्रेमोपहार तो श्रीकृष्ण अनन्त–अनन्त समझकर ग्रहण करता है। और अपनेको भी देकर समझता है है–'मैंने तो कुछ दिया नहीं । कहाँ, मैंने तो कुछ नहीं दिया इस असीम अनन्त प्रेमके प्रति।'

(5)

'आप युधिष्ठरको धर्मोपदेश क्यों नहीं करते ? आपके सम्मुख उपदेश करनेकी योग्यता तो विधातामें भी नहीं है। अर्जुनके बाणोंसे मेरा रोम–रोम विद्ध हो चुका है। बड़ी वेदना है शरीरमें। इस पीड़ामें उपदेश करना मेरे लिए सम्भव नहीं है।' शरशय्यापर पड़े भीष्म पिताहने श्रीकृष्णचन्द्रसे बड़ी दीनतासे प्रार्थनाकी थी क्योंकि श्यामसुन्दर पाण्डवोंको साथ लेकर उनके समीप पहुँचे थे। वे आज्ञा कर रहे थे कि पितामह धर्मराजको धर्मोपदेश करें ।

'आपके शरीरकी वेदना तत्काल दूर हो जाय।' श्रीकृष्णने संकल्प लिया। जिनका संकल्प कोटि–कोटि ब्रह्माण्डोंकी सृष्टि एवं प्रलय करता है, उनका संकल्प–पितामहको लगा कि उनका पूरा शरीर शीतल हो गया। कहीं जलन नहीं, वेदना नहीं, कष्ट नहीं । शरीर शरोंसे छिदा पड़ा है, शरशय्यापर वैसे ही पड़े हैं; किन्तु लगता है कि पूरे देहमें भली प्रकार चन्दनका लेप अभी–अभी किया गया है। चित्तकी व्याकुलता लुप्त हो गयी।

स्वस्थ, शान्त, निर्मल चित्त हो गया।

'दयाधाम !' भीष्मका कण्ठ भर आया। वे बोले–'धर्मके परमाश्रय ! मेरें शरीरकी पीड़ा तथा चित्तकी विकलता लुप्त हो गयी। बुद्धि स्वस्थ है, किन्तु आपके रहते मैं उपदेश करूँ ?

'पितामह ! उपदेश तो आप ही करेंगे !' पार्थसारथिने कहा–'मेरा यश बहुत है लोकमें। मेरी इच्छा है कि आपका यश भुवनमें प्रसृत हो। आप धर्मके कितने बड़े मर्मज्ञ हैं, वह विश्व जान ले !'

'आपकी आज्ञा !' भीष्मको आज्ञा–पालन करना पड़ा।

मानदः स्वसुहृदां वनमाली। (भागवत)

श्यामका स्वभाव है अपने सुहृदयों–अपने स्वजनोंको सम्मान देते रहना। वैसे यह बहुत नटखट है। बड़ा गम्भीर अवसर था, तब जब इसने पितामह भीष्मके सामने स्वीकार किया–'मैं आपको यशस्वी बनाना चाहता हूँ।'

एक तो पितामह बड़े–बूड़े, दूसरे शरशय्यापार पड़े मरणासन्न, तीसरे युधिष्ठिर शोक–विहवल। चारों ओर युद्धभूमिमें विखरे शवोंके अवशेष, टूटे–फूटे रथ तथा अस्त्र–शस्त्र–खण्ड। ऐसे वातावरणमें चपलता की नहीं जा सकती थी। केवल यहीं एक बार गम्भीर होकर कन्हाईने स्वीकार किया कि पितामहको यशस्वी बनाना चाहता है। अन्यथा यह स्वीकृति इसके स्वभावमें नहीं है।

यह चपल सम्मान देगा और दिखलायेगा ऐसा कि स्वयं इसने कुछ किया नहीं है। जिसे सम्मान देगा, वह तनिक भी अभिभूत न हो–ऐसा रूप बनायेगा ।

एक सखाने कहा–'कनूँ ! तू सात दिन हाथपर गिरिराज उठाये रहा ?'

'हाँ–मैं सात तो क्या, सत्तर दिन उठाये रह सकता हूँ।' मोहन ने ताली बजायी और हँसा–'क्यो सुबल ! तू, भद्र ! वथरूप !–तुम सब पहले जैसी लकुटियाँ खूब बलपूर्वक टेके रहोगे न ?'

लीजिये, अब लगता है कि गोवर्धन सुबल, भद्र, वरूथपकी लकुटियोंपर टिका रहा था। गोपकुमार तो यही समझते हैं; क्योंकि उनका यह सुकुमार सखा कहीं पर्वत उठा सकता है ?

'सखा तो बच्चे हैं– उलटा सीधा तो समझा देता है यह गोपोंको ,गोपियोंको । इसका कहना है–'दाऊ दादा पास हो तो मुझे किसीका भय नहीं लगता।'

नन्दबाबा, मैया यशोदा, सभी गोप–गोपियाँ समझते हैं कि दाऊ–वनमें साथ रहता है तो कोई दैत्य–दानव–श्यामका कुछ नहीं बिगाड़ सकता। दाऊ–वे तो बल हैं। उनकी शक्ति, उनका साहस–उनकी सुरक्षामें होनेसे ही तो सुकुमार कन्हाई बड़े–बड़े असुरोंको खेल–खेल में मार देता है ।

'सखाओं में सबसे बलवान् कौन ?' कोई पूछे देखे। ''मैं'' कन्हाई पहले कूद खड़ा होगा। यह इसकी पद्धति है।

'तू भद्रसे बलवान् है ?' अब प्रश्न करो।

'हाँ हूं ! क्या हुआ कि मल्लयुद्धमें भद्र मुझे पटक देता है ! मुझे पटक तो लेता है वरूथप, मणिभद्र, सुबल............।' अब सब आपको पटकनी दे लेते हैं; किंतु सबसे बलवान् आप हैं, इसको कोई न स्वीकार करे तो मोहनका दोष ?

मथुरामें कंसके अखाडे में मल्लप्रमुखोंको महाप्रयाणका मार्ग दिखाकर, उन सबके शवोंके मध्य ही सखाओंको खींच लिया आपने अखाड़ेमें और

और सखा पटकनी दे देते, यदि महाराज कंसके सिरपर काल न सवार हो गया होता । उस भरी सभामें सम्मान इसलिए रह गया कि कंस बीचमें ही बाबला होकर चिल्लाने लगा।

* * *

श्याम ! बाबाकी पादुकाएँ तो उठा ला !' माता रोहिणी, मैया यशोदा अथवा कोई आदेश दे देता है और नन्हा कन्हाई मस्तकपर धर कर पादुकाएँ लाता है।

'मोहन ! वह पाटा तो ला ।' कोई गोपी अपने या किसीको बैठनेके लिए पाट मँगा लेती है।

'कृष्ण ! तनिक नाच तो सही ! 'चुटकी या ताली बजाकर गोपियाँ इस मेघसुन्दरको ताथेइ–ताथेइ ताता थेइ थेइ, नचाती ही रहती हैं।

देवर्षि नारद इसके गुणगान करते नहीं थकते और यह है कि मैयासे सायंकाल गोचारणसे लौटानेपर एक–एक सखाकी भूरि–भूरि प्रशंसा करता है। प्रशंसा भी अपने ढ़ंगसे। यह कहेगा–'मैया ! तू इस सुबलको डाँट तो सही।'

'क्यों लाला ?'

'यह पक्का कृपण बन गया है।'

'अरे, सुबल ! कृपण बन रहा है तू ?' मैया हँसकर ही पूछेगी; क्योंकि वह जानती है कि उसके पुत्र के शब्दकोषमें शब्दोंके जो असाधारण अर्थ हैं, उनका ज्ञान देवी हंसवाहिनीको भी हो नहीं सकता ।

'हाँ, मैया ! भद्र, तोक, वरूथप............ये सब–के–सब कृपण हैं। मैया, ये तो सब जन्मसे कृपण हैं। ' कृष्णचन्द्र अपना स्पष्टीकरण करेगा–'घरसे जो कुछ कलेउ लेके जायँगे या वनमें जो फल–फूल पायेंगे, एक भी नहीं खायेंगे। सब मेरे ही पीछे पड़े रहते हैं–यह बड़ा मधुर है–तू खा ले !' मैं

इनको न बाटूँ तो ये भूखे ही रह जायँ ।'

'मेरा लाल सखाओंका बहुत ध्यान रखता है।' मैया हँसती है।

'मैया ! ये सब मेरे ही पीछे पड़े रहते हैं—धूपमें मत खड़ा हो । पेड़पर मत चढ़ ! दूरतक दौड़ेगा तो थकेगा।' मुझे आदेश दे—देकर तंग कर लेते हैं ये सब।'

'ओह ! सब—के—सब मेरे पुत्रको तंग करते हैं।' मैया हँसते—हँसते डाँटती है सखाओंको ।

'यह स्तोक पुष्प बड़े सुन्दर लाता है। बेचारा नन्हा स्तोक भी नहीं बचता, लेकिन लगायेगा मेरे ही केशोंमें । मैया यह मुझसे छोटा है। इसे मैं खिलाऊँ, सजाऊँ—यह मेरा अधिकार है न ? यह तो उल्टे कमलपत्र लेकर मुझे ही व्यजन करने बैठ जाता है। तू कम—से—कम इसे मार लगा।'

कन्हाईके स्तवनकी परिपाटी है यह ! यह चपल सम्मान भी देगा और दिखायेगा ऐसा कि पूछिये मत—

* * *

द्वारकानाथ, द्वारकाधीशके नामसे आप भले श्रीकृष्णचन्द्रको पहचानते हों और भले द्वारकाकी राजसभामें श्यामकी सम्मति ही सर्वोपरि मानी जाती हो; किंतु यादव महाराज उग्रसेन हैं। अपने हाथों कन्हाईने जिनको कारागार—मुक्त किया, उनको सिंहासनपर अभिषिक्त करके सम्मुख हाथ जोड़कर अत्यन्त विनम्र खड़ा होता है और जब उनसे कुछ कहना होता है—'देव ! निवेदन है' कहकर बोलता है।

'जैसी आज्ञा, प्रभु !' उग्रसेनके सम्मुख श्रीकृष्णचन्द्र कहते हैं। वे श्रीकृष्ण, जिनका आदेश पालन करनेमें समस्त लोकपाल अपना गौरव मानते हैं।

धर्मराज युधिष्ठरने राजसूय यज्ञ किया और वे एकच्छत्र सम्राट्

हो गये, किसी की शक्तिसे, किसीकी अनुकम्पासे यह हुआ ? श्रीकृष्ण सहायक न होते, सचमुच धर्मराज राजसूय यज्ञ करनेमें सफल हो जाते ?

श्रीकृष्ण नरेश नहीं है। वे राजसूय नहीं कर सकते थे। महाराज उग्रसेन तो राजसूय कर सकते थे ?

उग्रसेनः क्षितीशेशो यद् व आज्ञापययत् प्रभुः।
तदव्यग्रधियः श्रुत्वा कुरूध्वं माविलम्बितम् ।।
(श्रीमद्‌भा0 10–68–21)

बलरामजीने भीष्म, द्रोण, कर्ण दुर्योधनादि सबसे कहा था–'प्रभु–सर्वसमर्थ महाराजाधिराज उग्रसेनजी तुमलोगोंको जो आज्ञा दे रहे हैं, उसे स्थिर बुद्धिसे–सावधानीपूर्वक सुनकर उसका पालन करो। इस आज्ञाके पालनमें देर मत करो।'

कौरवोंको भ्रम हो गया–उनको लगा कि बलराम डींग मार रहे हैं। उन्होंने उग्रसेनजी को सम्राट एवं आज्ञा देनेका अधिकारी मानना अस्वीकार किया और लगे हाथ उन्हें उसका फल मिलता दीख पड़ा। दो घड़ी भी बीती नहीं और लगा कि पूरा हस्तिनापुर गंगाके गर्भमें जा रहा है। हाथ जोड़े, रोते–चिल्लाते बलरामजीकी शरण जाना पड़ा उन्हें।

'उग्रसेन सम्राट ! सम्राटोंके भी सम्राट ! आप उससे भी बड़ा कहें तो वह भी ! हल–मुसल लिये नीलाम्बरपरिधान आप किसी पथके भिक्षुकको–कुत्तेको भी सम्राट् कहें तो सुरपति भी उसको अपना सम्राट माननेको बाध्य है। उग्रसेनजी तो फिर भी यादव महाराज हैं।

किंतु श्यामसुन्दर–हलधरका यह अनुज ! इसने

उग्रसेनजीको,–अपने कुलको सम्राट्पद कहाँ दिया ? इसने सम्राट्पद दिया युधिष्ठरको। युधिष्ठर के इस राजसूय यज्ञमें इसकी प्रथम पूजा हुई–यह पाण्डवोंका प्रेम; किंतु उस यज्ञमें इसने सेवा क्या ली थी, यह पता है आपको ? अतिथियोंके पाद–प्रक्षालन तथा जूठी पत्तलें उठानेकी सेवाली थी कृष्णने।

राजसूय यज्ञमें सभी स्वजन कुछ–न–कुछकार्य कर रहे थे दानाध्यक्ष थे कर्ण। महाराजाधिराजको देश–देशके नरेश उपहार भेंट करने लाये थे। उन उपहारों को स्वीकार करने गौरवपूर्ण पद प्राप्त हुआ था–दुर्योधनको भोजनालयकी व्यवस्था भीमसेन करते थे और श्रीकृष्ण पैर धुलाते थे आगुन्तकों तथा जूठी पत्तलें उठाते थे।

महाभारतका युद्ध ही पाण्डव किसके बल पर ज़ीत सके ? किंतु श्रीकृष्ण तो अर्जुनके सारथि थे । सारथि भी अधूरे नहीं –पूरे । रथके घोड़ों को वे युद्धभूमिसे लौटकर मलते थे, टहलाते थे । घोडोंके घास–दानेकी व्यवस्था सँभालते थे और रथसे पहले उतरकर अर्जुनको हाथ का सहारा देकर रथसे उतारते थे।

*   *   *

श्रीरघुनाथनेक्या किया ? पूरी रामायण पढ़ लीजिये। अपनों को पद–पदपर सम्मानित ही तो किया है उन मर्यादापुरुषोत्तमने । विभीषण शरणमें आये तो सुग्रीवसे पूछते हैं–'रावणका भाई मिलने आया है। क्या करना चाहिये?'

यह भिन्न बात है कि सुग्रीवने जो सम्मति दी, वह उचित नहीं लगी; किंतु सम्मतिका सम्मान करके ही आगे कुछ कहा गया। पहली बात यही–'मित्र ! तुमने बड़ी अच्छी नीतिकी बात कही है ।'

विभीषणको अपना लिया तो उनकी बात मानकर तीन दिन निर्जल व्रत करते हुए समुद्र–किनारे कुशासनपर बैठे सागरसे मार्ग देनेकी प्रार्थना

करते रहे।

खेलमें कन्हाई प्रायः हारता है ब्रजमें । दाऊ दादाका दल जीतता है और वे साथ न हों तो विजय श्रीदामाके पक्षकी होती है। श्यामकी पीठपर विजयी सखा चढ़्ढी कसते हैं।

अयोध्याकी रीति–नीति इससे भिन्न नहीं है। भिन्न हो भी नहीं सकती। भरतलाल चित्रकूटमें भरे कण्ठ अपने बाल्यकालका स्मरण करके कह रहे हैं–

मैं प्रभु कृपारीति जियँ जोही। हारेहुँ खेल जितावहिं मोही ।।

मर्यादा–पुरुषोत्तम हैं, अतः पारखी प्राणोंसे 'कृपारीति' छिपा नहीं पाते। लेकिन बाबा नन्दका नटखट लाल–यह तो खेलमें सखाको विजयी कर देगा जान बूझकर और फिर झगड़ेगा–'मैं विजयी हुआ। दाव तू दे ! मैं नहीं देता दाव !'

गोपियाँ हों या गोपकुमार–कन्हाई रूठेको मनाता है। हाथ जोड़कर, पैर पड़कर –जैसे भी कोई मान जाय। किंतु उसे रूठना नहीं आता। इसका यह असीम स्नेह ही तो औरोंको रूठनेकी प्रेरणा देता है। इसे चिढ़ाना आता है, खिजाना आता है किंतु रूठना नहीं आता। अपनों से ब्रजराजकुमार कभी रूठता नहीं–रूठ सकता ही नहीं लोग कहते है–'दैव रूठ गया।' रूठता होगा दैव, किंतु हमारा कृष्ण तो सदा तुष्ट ही रहता है। इसे तो रूठेको मनाना ही आता है।

कन्हाई का सम्मान–कोई क्या सम्मान देगा इस ब्रजके युवराजको? बड़े–बड़े ऋषि मुनि इसकी स्तुति करते थकते नहीं । ब्रह्मा, इन्द्र, शारदा ही नहीं–भगवान् शशांकशेखर भी इसके पदोमें सर झुकाते हैं; किंतु स्तुति प्रणति करके क्या इस चपल को गम्भीर बनाना अच्छा लगता है ? इसे ही क्या यह सब रुचता है ?

प्रणाम करके जाओ तो यह अँगूठे दिखायेगा और तुम्हारी पूजा करने लगेगा। इसका श्रृंगार करने बैठो तो यह उलटा तुम्हारा श्रृंगार कर देगा। यह मदनमोहन–अपनोंकी सेवा, आपनोंका सम्मान करनेमें ही इसके प्राण बसते हैं।

(6)

श्रीकृष्णचन्द्र शिशु ही तो है। इसे पकड़ना आता है; किंतु छोड़ना नहीं आता। बहुत शीघ्र पकड़ लेता है यह । कोइ हाथ, कोई अँगुली इसके समीप कीजिये, इसके नन्हें कोमल, कमलारुण कर उसे पकड़नेको उत्सुक ही रहते हैं । यह तो समीप आने वाले मुखकी नाकतक पकड़ने को हाथ बढ़ा देता है। एकबार इसकी पकड़ में कुछ आ जाय बस ! आप फिर बल लगाते रहिए, उछलते–कूदते रहिए, नन्दलालने जो पकड़ा–बस पकड़ लिया। छोड़ने की कला इसे नहीं आती और किसीने इसे यह कला सिखलायी नहीं। गोपके घर तो एक ही शिक्षा बाबा, मैया और दूसरे सब देने वाले हैं– अपना बनाकर त्यागना नहीं।'

कन्हाईको पूतनाने गोदमें उठाया था । स्तनोंमें हलाहल विष पोतकर आयी थी वह बालहत्यारिणी राक्षसी शिशुओंका रक्त उसका प्रिय पेय था। श्यामसुन्दरके मुखमें भी उसने स्तनाग्र दे दिया। मोहनने वक्ष नन्हें करोंसे पकड़ लिया और दूध पीना आरम्भ किया। इसे लगा–'यह अच्छी धाय मिली।'

अब पूतना लाख चिल्लाये, हाथ–पैर पटके और भागे–दौड़े, क्या होनेवाला था ! मैया यशोदाके लालको तो वह धात्री लगी और उसने पकड़ लिया उसे । अब पूतना तो क्या, पूतना के निर्मातामें भी शक्ति है कि कृष्णके हाथसे उसकी धायको छुड़ा लेगा ?

गई मारन पूतना कुच कालकूट लगाइ।
मातुकी गति दई ताहि कृपालु जादवराइ ।।

पूतना राक्षसी—रुकिये ! राक्षसी तो वह जब थी, तब थी। राक्षसीको तो मरना और मर गई वह। उसे तो नन्दबाबाके गोपोंने टुकड़े—टुकड़े काटकर भस्म कर दिया। पूतना श्यामकी धाय—जैसे ही कृष्णने उसके स्तनमें अपना नन्हा, कोमल मुख लगाया, वह कन्हाईकी धाय—माँ हो गयी। वह होना चाहती थी या नहीं, इसका प्रश्न कहाँ उठता है। मैया यशोदाका लाल कहाँ किसी विधानसभा का अध्यक्ष है कि वह लोगोंकी सम्मति लेता फिरे ? पूतनाने उसे दूध पिलाना चाहा, उसने दूध पीना प्रारम्भ किया तो पूतना धाय हो गयी और हुई सो हुई । श्रीकृष्णको छोड़ना जो नहीं आता। धात्री बना ली—सदाको बनाली वह तो।

'अहो बकी यं स्तनकालकूट—
जिघांसयापायदप्यसाध्वी।
लेभे गतिं धात्र्युचितां ततोऽन्यं
कं वा दयालुं शरणं ब्रजामि ।।

(श्रीमद्भागवत)

नित्य—लोक भेज दी पूतनाको और वहाँ भी धाय बनाकर। सदा—सदाको मोहनको दूध पिलानेका कार्य मिला उसे।

वह आया था तृणवर्त ब्रजमें । आया था बवंडर बनकर । वह और कुछ करता, उसने श्रीकृष्णको क्यों उठाया ? कोई श्यामको गोदमें उठाले और असुर बना रहे, यह भी क्या बनने योग्य बात है ? उसने गोदमें उठाया और ले उड़ा। अब नन्हें शिशुको आप गोदमें लेकर ऊपर उछालेंगे तो वह आपके गलेमें चिपटेगा नहीं ?

'छोड़ ! छोड़ ! तृणावर्त मूर्ख ही तो था। नन्दनन्दनने पकड़कर किसीको छोड़ा है या उसीको छोड़ देगा ? गला घुटता है, असुर मूर्छित, मृत होकर शिलापर गिरता है–यह सब तो होना ही था । श्रीकृष्णको गोदमें लेकर असुरत्वको तो मरना ही होगा। सूर्यका आवाहन भी करेंगे आप और रात्रीको बनाये भी रखना चाहेंगे तो यह आपकी बात चलेगी ?

एक तृणावर्तकी बात ही क्या–जो असुर ब्रजमें आया, उसका असुरत्व मारा गया। मरता तो देह ही है। सुर असुर देह ही होता है। आत्मा–अरे, ब्रजमें आया, उसका आत्मा तो ब्रजेन्द्रनन्दनका अपना ही हो गया। अपनाकर त्यागना यह गोपकुमारके शास्त्रमें नहीं है।

* * *

श्रीकृष्ण नहीं देखता कि उसके समीप सुर आते हैं या असुर ! जो पकड़ने आता है, उसे पकड़ लेता है। पकड़ लेता है तो छोड़ना जानता नहीं। जिसे श्रीकृष्ण पकड़ लेगा, वह न सुर रहेगा, न असुर। अग्निमें चन्दन डालो या बबूल–दोनों अग्नि बन जाएँगे। जिसे श्रीकृष्ण पकड़ लेगा, वह श्रीकृष्णका अपना हो जायगा। उसका स्थान गोलोक।

आप कैसे हैं, इसे कोई पूछेगा नहीं । किसने कहा कि परम शुद्ध–चरित, विमलचित, योगी–ज्ञानी–धर्मात्माको ही श्रीकृष्ण अपनाता है ? ब्रजेन्द्रनन्दनको तो किसी हत्यारे असुर को पकड़ लेनेमें आपत्ति नहीं है। इस अहीर के बालक के लिए तो कोई अछूत है ही नहीं। आप इसे पकड़ना, इसे अपनाना चाहते हैं या नहीं, आप इसे पकड़ना, इसे अपनाना चाहते हैं या नहीं, यह आप अपने हृदयसे पूछिये?

शीघ्रता मत कीजिये। श्रीकृष्णको आप पकड़ भी लें और असुरत्वको बचाये भी रहें, यह दोनों बात नहीं बनेगी। काम, क्रोध, लोभ, मोह–देहकी,

परिवारकी संसारकी आसक्ति–यह असुरत्व है पद–प्रतिष्ठा, धन परिवार, सुख–स्वास्थ्य सब बना रहे और श्रीकृष्ण भी मिल जायँ–बड़ा झूठा लोभ है। नाम–रूपका मोह–देहकी आसक्ति ही असुरत्व है और इसे बनाये रखना है तो ब्रजराजके कुमारसे दूर ही रहना चाहिए आपको।

मैं कहाँ कह रहा हूँ कि आप निर्दोष, निरासक्त होकर ब्रजेन्द्रनन्दनके समीप आवें। इसे तो धूलि–कीचड़में लिपटे सखाओंको अंकमाल देनेका व्यसन है। आप जैसे हैं, वैसे ही इसके समीप आ सकते हैं– वैसे ही यह आपको पकड़ लेगा–हाथ आयेको पकड़ लेना इसका स्वभाव है। मैं कह यह रहा हूँ कि आप आयें तो प्रस्तुत होकर आयें कि श्रीकृष्णके पकड़ते ही असुरत्वकी मृत्यु निश्चित है।

व्रजमें आया प्रलम्ब । असुर था वह; किन्तु गोपकुमार बनकर आया। उसने समीप आकर श्यामसे कहा–'मुझे भी अपने सखाओंमें मिलाओगे? साथ खेलने दोगे मुझे ?'

'हाँ–हाँ ! आओ श्रीकृष्णको अस्वीकार करना कहाँ आता है। वह तो सदा उत्सुक रहता है अपने सखाओंकी संख्यावृद्धि करनेको। गोपोंका–अहीरोंका यह सनातन स्वभाव है कि अपने दलकी वृद्धिको वे सदा उत्सुक रहते हैं

श्यामसुन्दरने प्रलम्बको पहिचाना नहीं ? ऐसी आशंका तो किसी वज्र–मूर्खको ही होगी । कन्हाई के कमलदलविशाल लोचनोंसे कुछ छिपा लेना ब्रह्माके भी वशके बाहरकी बात है; किन्तु कोई अपने स्वभावका क्या करे ? श्रीकृष्णका स्वभाव है–सबको स्वीकृति देना। अस्वीकार करना इसने सीखा नहीं । असुरको यह सखा न बनावे –असुरत्वको साथ लिये जीव इसके श्रीचरणोंकी शरण पाने की आशा कैसे कर सकता है ?

प्रलम्बको केवल सखा ही नहीं बनाया श्रीकृष्णने । उसे

बहुत सम्मान दिया। उसे अपने दल में रक्खा । उसकी सम्मति के अनुसार उस दिन खेल प्रारम्भ हुए। प्रलम्बको लगा–छोटा भाई दुर्धर्ष हो तो बड़ेको ही ले उड़ो।

बुद्धू था प्रलम्ब ! क्षमा करें–असुर सदा मूर्ख होते हैं असुरत्वकी सब वृत्तियाँ अज्ञानता हैं। बड़े से बड़ा विद्वान्, बुद्धिमान् जब लोभ, मोह, काम, क्रोध आसक्तिके चक्कर में आता है, कम–से–कम उस सम्बन्धमें मूर्ख हो जाता है,

'जिमि कुपन्थ पग देत खगेसा।
रहइ न बुधि बल तन लव लेसा।।'

प्रलम्ब असुर था। अतः मूर्खता तो अवश्यमभावी थी उससे। कन्हाई तो कुछ हल्का भी होता, दाऊ कभी हल्के हुए हैं ? बड़े भाईका गुरुत्व प्रलम्बको भारी पड़ने लगा और उसे अपना रूप–अपना असुर रूप प्रकट करना पड़ा। फिर तो बलरामके मुष्टिप्रहारसे असुर–की कपालक्रिया हो गयी !

असुर मर गया। असुर ही मरता है श्रीकृष्णके समीप आकर। प्रलम्बको तो सखा बनाया था नन्दनन्दनने । वह तो सदा के लिए श्यामका सखा बन गया। श्रीकृष्णकी स्वीकृति तो शाश्वत स्वीकृति है।

* * *

प्रलम्बके समानही आया व्योमासुर भी गोपबालक बनकर। मायावियोंके परमाचार्य दानवश्रेष्ठ मयका पुत्र व्योम महामायावी। कंसका मित्र अत्यन्त छल–चतुर और आया बड़ी निष्ठुरता लेकर। व्रजराजकुमार यह सब देखा नहीं करता। व्योमको सखाओंमें मिल जाने में कोई कठिनाई नहीं हुई। गोपकुमार न सही वेश तो गोपकुमार का ही था। व्योमको भी वह सम्मान मिला जो किसी नवीन सखा का संकोच दूर करने के लिए पहले दिन आवश्यक है। उस दिन की क्रीड़ामें व्योमकी सम्मतिका सत्कार हुआ ।

व्योम सखा बनकर सचमुच क्रीड़ा करने तो आया नहीं था। उसे तो अपनी क्रूरताकी आहुति देनी थी। वह गोपकुमारोंको एक–एक करके अन्धकारभरी गुफामें बन्द करने लगा। गुफाद्वारपर भारी शिला रख दी उसने।

श्रीकृष्णके सखाओंको कोई बन्दी रख सका है ? ब्रह्मा जी भी एक बार बछड़े और गोप–बालकोंको उठा ले गये थे। वह शिक्षा मिली उन्हें कि पूरे जीवन नहीं भूलेगी। बार–बार कन्हाईके चरणोंपर उठते–गिरते रहे देरतक और मयूरमुकुटी बोला तक नहीं। गोपबालक, बछड़े सब लौटा दिये, बड़ी लम्बी स्तुति की, किन्तु श्रीकृष्णने ब्रह्माको दो शब्द तो अनुग्रहके नहीं सुनाये!

सृष्टिकर्ता गोपकुमारोंको किसी दुर्भावसे नहीं ले गये थे । उन्हें केवल नन्दतनयकी कोई रूचिर लीला देखनी थी, किन्तु व्योम तो बन्दी बनाकर मार देना चाहता था सखाओंको। श्रीकृष्णको कदाचित ही कभी क्रोध आता हो। नित्य सुप्रसन्न आन्नदकन्द श्रीव्रजचन्द्र, किन्तु कोई उसके जनों पर कुटिल दृष्टि उठावे..........। भक्तापराध क्षमा करना भगवानको नहीं आता और यह व्रजराजकुमार तो सर्वथा अपनोंका है।

श्रीकृष्णचन्द्रने बहुत असुर मारे हैं। धरापर यह आया ही भूभार हरण करने, किन्तु इसकी भृकुटिपर बल नहीं पड़ा । क्रोध कभी नहीं आया इसे । चक्र उठे या न उठे, असुर संहार सदा खेल–खेल में किया इसने । जिसे भी मारा–क्षणमें मार दिया; किन्तु व्योमने जो कुटिलता की कन्हाईको रोष नहीं; क्रोध आया। क्रोध भी ऐसा कि श्याम जैसे अपना दयामय स्वभाव भूल ही गया ।

'यह मेरे सखाओंपर हाथ उठाता है ! सखाओंको बन्दी करके

मारना चाहता है। एक गोपकुमारको जब व्योम ले जा रहा था, गुफाद्वारपर ही श्रीकृष्णने उसे पकड़ लिया। व्योम अपने दानवरूपमें आ गया—व्यर्थ ! असुर, दैत्य, दानव, राक्षसवेश कृष्णचन्द्र को भयभीत करेगा ? लात, थप्पड़, घूँसे—श्याम सचमुच असीम क्रोधमें था आज। इसने अन्धाधुंध पीटना प्रारम्भ किया व्योमको। यह भी इसने नहीं देखा कि असुर—देह कब गिरा, कब मूर्छित हुआ, कितना तड़पा—चिल्लाया और कब मर गया। कन्हाई पीट रहा था और पीटता चला गया। व्योमकी हडिडयाँ पिस गयीं ! शरीर मांसका लोथड़ा बन गया और लोथड़ा स्थान—स्थानसे फट गया।

यह सब हुआ—असुर के साथ, असुर—देहके साथ तो यह सब हुआ, किन्तु व्योमका क्या हुआ ? उसका होना भी क्या था। वह गोपकुमार बनकर श्रीकृष्ण के समीप आया था। श्रीकृष्णने उसे सखाके रूपमें स्वीकार किया था। दानवदेह तो विनाशी था। विनष्ट हो गया। रूप अविनाशी जिसे श्यामने अपना बनाया। व्योमको वह अविनाशीरूप—गोपकुमार—रूप प्राप्त होना था। वही रूप उसका अपना रूप है और वह रूप तो उससे कन्हाई भी छीन नहीं सकता था ।

* * *

कोटि बिप्र बघ लागइ जाही।
आए सरन तजउँ नहिं ताही।।

ये अपने वचन हैं मर्यादापुरुषोत्तम के। कोई आये—सम्मुख आये तो सही। किन्तु एक बात अवश्य श्रीरघुनाथने स्पष्ट कर दी है—

जौ पै कुटिल हृदय सो होई।
मोरे सनमुख आव कि सोई ।।

दम्भी सन्मुख नहीं आ सकता। पापी, अपराधी—असुरतक समीप आ सकता है; किन्तु दम्भी तो सम्मुख ही नहीं आ सकता।

कोई सम्मुख ही न आवे तो दयाधाम क्या करें ?

'सकृत प्रनाम किएँ अपनाए ।'

सम्मुख आकर कुछ साधन–भजन, पूजा–पाठ, जप–तप योग–यज्ञ, सेवा, सत्कार; यह सब कुछ आवश्यक नहीं । एक बार मस्तक झुकाकर प्रणाम किया और वे उदार–चक्र चूड़ामणि दोनों भुजाओंमें भरकर हृदयसे लगा लेने को पहले से उत्सुक खड़े हैं।

मत करो प्रणाम ! सकृत् प्रणाम भी कौन माँगता है ? रावण हिरण्याक्ष, कुम्भकर्ण, कंस–किसने प्रणाम किया था ?

'जनम तें सिसुपाल दिन प्रति देत गिन गिन गारि ।
लियौ ताहि मिलाइ निज मैं कृपासिंधु मुरारि ।।'

शिशुपाल तो प्रतिदिन प्रातः उठकर यही सन्ध्या पूजा करता था कि श्रीकृष्णको गालियाँ दे । गालियाँ ही दे रहा था वह जब चक्रने उसका सिर काटा, किन्तु शिशुपाल को क्या मिला ? उसे श्रीकृष्णका सायुज्य प्राप्त हुआ।

प्रेमसे पूजा करने या द्वेषसे आघात करने, भावसे स्तुति करने या कुभावसे गाली देने–यह प्रश्न नहीं है कि आप कन्हाईके समीप कैसे जाते हैं ? जो समीप आवे, उसे पकड़ लेगा और पकड़ लेगा तो फिर छोड़ेगा नहीं। श्रीकृष्णका यह स्वभाव है। इसके स्वभावको भूलिये मत।

प्राणी भगवद्विमुख होता है माया के चक्करमें आकर। श्यामको एक बार अपना हाथ पकड़ लेने दीजिये, सब चक्कर वह दूर से ध्वस्त करता रहेगा। फिर आप कितना उछलो–कूदो, कितना ही हाथ छुड़ाना चाहो, कितना भी संसारमें दौड़ने का प्रयत्न करो–यह नटखट हाथ छोड़नेसे रहा और वह हाथ नहीं छोड़ेगा तो आपके पुकारने–बुलाने से माया आपके समीप आवेगी ? प्रचण्ड

प्रकाशके समीप खड़े होकर अन्धकारको पुकारोगे तो आपकी पुकार व्यर्थ ही तो होगी।

'नाम लेत भव सिंधु सुखाहीं।'

डूबते वे हैं जो श्रीकृष्णके नहीं है। तैरना उन्हें पड़ता है, जो यशोदासुतके करोंमें अपना कर नहीं देते । कन्हाई–को अपना हाथ पकड़ा दिया–अब भवसिन्धु है कहाँ जो कोई उसे तैरकर पार करेगा ? श्रीकृष्णके सम्मुख तो इसकी कोई छाया भी नहीं टिकती । कोई डूबना भी चाहे तो जल होगा तब न डूबेगा ? आपने जब कहा 'श्रीकृष्ण ! मैं तुम्हारा।'

[कन्हाई कहता है–'हाँ तुम मेरे ।'

हो गयी बात – समुद्र तो सूख चुका; क्योंकि कन्हाई के चरणोंको भी आर्द्र कर सके ऐसा समुद्र कभी न हुआ न होगा और जिसका हाथ वह पकड़ चुका, उसका हाथ छोड़ना तो इसे आता नहीं ।

(7)

श्रुति–शास्त्र–संत कहते हैं–"परमात्मा परम कारुणिक, अनन्त करूणावरुणालय, सर्वज्ञ, सर्वसमर्थ है। "

संसारमें प्रत्यक्ष दीख रहा है–जीव अत्यन्त दुःखी हैं। कहीं लोग दाने–दानेको तरसते, क्षुधासे तडपते प्राण त्यागते हैं, कहीं रोग पीड़ित कराह रहे हैं । अभाव, रोग, शोक, भय आदिसे मनुष्य अत्यन्त पीड़ित हैं। अकाल मुख फाड़े निगल रहा है शत–शत निरीह प्राण। युद्ध, दंगे आदि में क्या–क्या नहीं होता। नन्हे शिशु जब भालेकी नोक, संगीन या छुरे पर उछाल दिये जाते हैं, असहाय अवलाओं पर उन्मत पिशाच अत्याचार करते हैं, घर एवं मुहल्ले जब फूंक दिये जाते हैं, परमाणुबम से जब पूरा नगर दो क्षणमें राख कर दिया गया–विश्वमें उत्पीड़न, अत्याचारकी परम्परा आज ही तो प्रारम्भ नहीं हुई। यह सब न भी हो तो रोग, शोक, अभाव ही क्या पीड़ा देने को कम हैं ।

श्रुति–शास्त्र–संत जो कहते हैं, वह सत्य नहीं है–यह कहनेका साहस मुझमें नहीं है और जो स्पष्ट प्रत्यक्ष विद्यमान है, उसे कोई अस्वीकार कैसे कर देगा। फिर इन दोनों सत्योंमें समन्वय क्या है ?

'परमात्माकी प्रेरणा से सृष्टि होती है तो उसीकी प्रेरणासे प्रलय भी होता है। जीव अविनाशी है और शरीर नाशवान है ही । कोटि–कोटि शरीरों
के नष्ट होने से परमात्माका कुछ बिगड़ता नहीं ।' यह बात मान ली, किन्तु जीव क्षण–क्षण दुखी रहे, वह आर्तक्रन्दन करता रहे और कोई तटस्थ द्रष्टा बना रहे, उस क्रन्दनका–वह निष्ठुर होगा या दयालु ?

'परमात्माका प्रत्येक विधान मंगलमय है ।' इस अकालमें देश विभाजनके समय हुए पैशाचिक अत्याचारों में, परमाणु बम से नगरोंके भस्म होनेमें मंगल–विधान होगा परमात्मा का, किन्तु इतना उग्रमंगल–विधान ? कोई सुखकर, कोमल विधान करने में वह समर्थ नहीं है ?

'जीवोंका प्रारब्ध। जैसा करो, वैसा भोगो।' ठीक बात, किन्तु तब परमात्माकी दयालुता, सर्वशक्तिमता, सर्वज्ञता क्या काम आवेगी ? परमात्मा का होना तो कर्म–विधानके संचालनमात्रके लिए ही आवश्यक है न ?

मैं परमात्माकी बात क्यों ले बैठा ? बात यह है कि ईश्वर, भगवान परमात्मा ब्रह्म–पता नहीं कितने नाम लोगोंने कन्हाई के रख छोड़े हैं। लोग इसका एक नाम रख देते हैं और कह देते हैं–'यह ऐसा है।'

कन्हाई स्वीकार ही करना जानता है। यह उसे अपना नाम मान लेता है और जो गुण नाम रखनेवाले कहें–सब अपनेमें हैं, इसके लिए भी स्वीकृतिमें सिर हिला देता है। यह सब है, किन्तु इसके स्वभाव की एक विशेषता पहिचानी है श्रीरामानुजाचार्यजीने। वे कहते हैं–

'रक्षापेक्षामपेक्षते।'

यह नटखट है और खिलाड़ी है। कोई हंसे तो ताली बजाता है–रोये तो ताली बजाता है। अपने खेलमें–अपनी मौजमें तल्लीन–सृष्टि हो प्रलय, इस आनन्दकंदका ध्यान ही उधर नहीं जाता। इसे ध्यान दिलाना पड़ता है। आप ध्यान न दिलाओ तो इसका ध्यान प्रलयकी ओर भी नहीं जायगा और ध्यान दिलाया जाए तो चींटींकी टूटी टांगकी पीड़ा भी इसे व्यथित कर देगी और उसकी मरहमपट्टी करने भी यह दौड़ा आयेगा ।

आप ईश्वर कहो, परमात्मा कहो, भगवान कहो– कहोगे इस नन्दबाबाके पुत्रको ही और यह 'रक्षापेक्षामपेक्षते।' जो इससे अपेक्षा करे कि 'यह दयामय, सर्वज्ञ, सर्वसमर्थ, मेरी रक्षा करे ।' उसके लिए–केवल उसके लिए–केवल उसके लिए यह अनन्त दयाधाम, नित्यसर्वज्ञ, सर्वसमर्थ है और उसकी रक्षाको दौड़ा आयेगा। अन्यथा, तो संसारमें जो प्रत्यक्ष सत्य है, उसे आप देख ही रहे हैं ।

* * *

गजेन्द्रको ग्राहने जलमें पकड़ लिया था। ग्राह जलमें खींच रहा था और गजेन्द्र बाहरकी ओर। सर्वज्ञसे छिपा था सरोवरमें क्या संघर्ष हो रहा है ? किन्तु कहीं कुछ हो रहा हो, इससे उस निर्गुण, निरंजन, निर्लेपसे मतलव ?

जी–सच्ची बात यही है कि जिसे आप ईश्वर कहते हैं यह कन्हाई वस्तुतः निर्गुण, निरंजन निर्लेप, निर्विशेष है– इसमें गुण, राग, विशेषता तो आप देते हैं । आप कहते हैं–दयामय। तब यह आपके लिये दयामय हो जाता है। अब आपने इसे दया का गुण दे दिया तो आपसे यह तटस्थ कैसे रहेगा ? आपपर इसका अनन्त स्नेह उमड़ेगा। आपके प्रति इसका विशेष राग होगा।

गजराज थकते गये और अन्ततः लगा कि डूबे । बड़ी कठिनाईसे पाससे एक कमलपुष्प सूंडसे तोड़कर ऊपर फैंकते हुए पुकार उठे–'नारायण! रक्षा करो।'

उत्क्षिप्य साम्बुजकरं गिरमाह कृच्छा।
त्रारायणाखिलगुरो भगवन् नमस्ते ।।

(श्रीमद्भा0 8। 3। 32 का उत्तरार्द्ध)

अब लीजिये–निर्विशेष सविशेष हो गया। भगवान् नारायण गरुड़पर चढ़े दौड़े और गरुड़का वेग भी उन्हें कम लगा तो कूदकर पैदल भागे। अब कोई ग्राह कैसे गजेन्द्रके लिए विपत्ति बना रह सकता है। अब तो सर्वलोकमहेश्वर चक्र उठाये गजेन्द्रके पक्षमें आ गया था।

– – –

वह नटखट श्याम–जबतक इसे पुकारो नहीं, कानमें तेल डाले बैठा रहेगा। तबतक आपके लिए ईश्वर है ही नहीं, जबतक आपको ईश्वर स्मरण न आये और आजके मानवका दुर्भाग्य–उसके सम्मुख नृशंस अत्याचारी उसके शिशुओंकी हत्या करता है, उसकी बहिन–बेटीके साथ पैशाचिक व्यवहार करता है, किन्तु उसे रोने चिल्लानेको छोड़कर ईश्वरको पुकारनेका स्मरण नहीं आता।

एक बात और–आप पुलिसकी, सेनाके आनेकी आशा भी करते रहेंगे, अपनी बुद्धि या लाठीका सहारा भी लेते रहेंगे और कन्हाईको भी जब पुकारेंगे तो यह नहीं सुनेगा। इसका स्वभाव ही है कि यह तभी दौड़ता है, मनुष्य केवल इसीसे आशा करता है। दूसरे किसीसे, अपनी किसी भी शक्तिसे किंचित भी आशा आपको है तो यह कृष्ण आपकी उस आशाके सक्रिय होनेमें टाँग अड़ाने नहीं आयेगा। जब कोई आशा, कोई आश्रय न रह जाये इसे पुकार लीजिये । निश्चिन्त रहिये–ऐसी पुकार अनसुनी यह कर नहीं सकता।

श्याम पुकारे बिना नहीं सुनता। कोई और आशा भरोसा रखकर

पुकारो तो इसे लगता ही नहीं कि इसको पुकारा जा रहा है। यह एक ही भाषा समझता है–हृदयकी भाषा और हृदय तो एक साथ एकको ही पुकार सकता है। आप केवल मुख से पुकारें तो कन्हाई समझेगा नहीं । जो बात समझी ही नहीं गयी, उसके अनुसार कोई व्यवहार कैसे करेगा ? द्रुपदराजतनया, पाण्डवपट्टमहिषी द्रौपदीको दुर्योधनने भरी राजसभामें पकड़ मंगाया। पाण्डव द्यूतमें हार चुके थे। वे धर्मसे–अपने सत्यसे बँधे थे । कुछ न कर सकते थे, न बोल सकते थे। दुर्योधनने अपने अनुज को आज्ञा दी–'इसे नंगी कर दो।' राजसूय यज्ञमें जिसका साम्राज्ञीपदपर अभिषेक हुआ, उसका यह अपमान। अग्रजकी आज्ञासे दुष्ट दुशासनने एकवस्त्रा द्रोपदीकी साड़ीका छोर पकड़ लिया और लगा खींचने। द्रोपदीको अब भी विश्वास नहीं था कि इस सभामें दुःशासनको यह धृष्टता करनेका साहस होगा, किन्तु.....................

श्रीकृष्ण सर्वज्ञ नहीं हैं ? उनको पता नहीं है कि क्या हो रहा है हस्तिनापुरकी कौरव –राजसभामें ? किन्तु श्यामका स्वभाव–द्रोपदी परमभक्त सही, कन्हाईको वह पुकार कहाँ रही है। पुकारे बिना–रक्षा की अपेक्षा किये बिना तो नन्दनन्दन कुछ करता नहीं।

'महाराज धृतराष्ट्र अन्धे सही, किन्तु संजय और विदुर उनको सब सूचित कर रहे हैं। पुत्रवधूको उनका ही पुत्र नंगी करने जा रहा है–कुछ कहेंगे। दादाजी, अतुल पराक्रमी परमधर्मज्ञ भीष्मके विद्यमान रहते दुःशासन का यह साहस ? ये रोक देंगे। गुरुदेव द्रोणाचार्य भी तो हैं। ब्राह्मण हैं और पाण्डवोंके भी गुरु हैं–ये विरोध करेंगे इस अन्याय का। मेरे पाँचों पति यहीं हैं–ये कुछ करेंगे।' द्रौपदीके भयार्त नेत्र चारों ओर घूम गये । सबने सिर झुका रखा है। कहींसे कोई आशा नहीं ।

'कृष्ण ! श्यामसुन्दर ! सदाके मेरे विपत्तिके सहायक !' प्राणोंसे

पुकारा।

यह क्या हुआ ? कन्हाई भी अनसुनी करता है ? वह भी सहायता
करने नहीं दौड़ा, क्योंकि द्रोपदीने अभीतक साड़ी हाथ से पकड़ रखी है। अपना बल अभी रक्षामें लगा है। यशोदाका लाल अभी नहीं आ सकता। दूसरा किंचित् भी भरोसा है तो यह घनश्याम बीच में नहीं पड़ता।

अबला नारी और असीम बलशाली दृष्टहृदय दुःशासन। साड़ीको झटका लगा और हाथ से छूट गयी। व्याकुल होकर द्रोपदीने दोनों हाथ ऊपर उठाकर पुकारा–

'श्रीकृष्ण ! द्वारकावासिन्। देवदेव ! जगत्पते !

एक वस्त्रा, रजस्वला द्रोपदी–अस्पृश्या, अपवित्र दशा, किन्तु कृष्णके लिये क्या पवित्र, क्या अपवित्र । लो, वस्त्रावतार हो गया कन्हाईका। मूर्ख दुःशासन कितने वस्त्र खींचेगा वह ? अनन्तका कहीं अन्त हुआ है कि दुःशासन ही पा लेगा। वस्त्रोंकी राशि बढ़ती गयी, द्रोपदीकी साड़ी शरीर पर ज्यों–की–त्यों। थककर, पसीनेसे लथपथ होकर दुःशासन बैठ गया थककर–हारकर।

* * *

दूसरों की बात छोड़–दीजिये–वैसे सच यह है कि कन्हाईके लिए कोई दूसरा है नहीं सब उसके अपने ही हैं । दूसरा–परपक्ष वह, जो अपने को पराया माने, किन्तु कह यह रहा हूँ इसके ब्रजकी बात।

नन्दबाबाको अजगरने पकड़ा। वह महासर्प बाबाके पैर निगलने लगा और कमर तक उन्हें निगल गया। सब गोप जागे। सबने जलती लकड़ियोंसे खूब–खूब पीटना प्रारम्भ किया सर्पको। बड़ा हल्ला–गुल्ला मचा, किन्तु कृष्ण खुर्राटे लेकर सोता रहा । इसकी नींद तब टूटी, जब बाबा ने पुकार की–'कृष्ण ! कृष्ण ! मुझे सर्प निगले जा रहा है। इससे जल्दी बचा।'

दूसरी बार बाबा यमुनामें स्नान करने उतर गये तो उन्हें वरुणका सेवक पकड़ ही ले गया। यमुनामें गोप कूदे और उन्होंने पुकारा–कृष्ण ! दौड़ लाला, ब्रजराज डूब गये ।

वनमें दावाग्नि लगी। गायें, गोपबालक–सब घिर गये। कन्हाई भी उनके मध्य ही था और सो नहीं रहा था, किन्तु कुछ करना चाहिये, गायों और सखाओं को बचाना चाहिये, यह उसे तब स्मरण आया–जब दावानल समीप आ गया और सखा भयत्रस्त पकार उठे–'श्याम ! हम तेरे हैं। यह दावाग्नि हमें भस्म करने आ रहा है । हमारी रक्षा कर।'

यह कन्हाई अग्निपायी है दावाग्नि पी लेना इसके लिए कोई बात नहीं है। यह पी तो लेता है भव–दावानल, किन्तु जब कोई कहे, कोई पुकारे। ब्रजके सब लोग उस दिन कालियदहके किनारे ही सो गये थे। सब थे–पूरा ब्रज था वहाँ। रात्रिमें दावाग्नि लगी और बढ़ी, सब जागे किन्तु यह अग्निपायी तब जागा, जब सवने पुकार लगायी–'कृष्ण ! श्यामसुन्दर ! यह दावानल बढ़ता आ रहा है। इससे हमारी रक्षा कर।'

गोपियाँ–प्रेमकी ध्वजा गोपियाँ। वे रात्रिमें बनमें गयी थीं कुछ अपने कार्यसे इस भुवनमोहनकी मोहिनीने ही उन्हें खींचा था। वे इसके लिए गयी थीं और इसके साथ ही क्रीड़ा कर रही थीं । श्याम अकेला भी नहीं था। इसके अग्रज भी थे साथ ही, किन्तु जैसा छोटा भाई, वैसा बड़ा भाई। शंखचूड़ यक्षने गोपियोंको–पकड़ा–बलपूर्वक उठाया और भाग चला दोनों भाई ऐसे –मानो कुछ देखते ही नहीं। दौनों दौड़े और पूरे शालवृक्ष उखाड़कर दौड़े, किन्तु कब ? जब गोपपियोंने पुकार की–'हे अमित विक्रम राम ! हे कृष्ण ! रक्षा करो।'

*   *   *

सदा तो कोई पुकारनेकी स्थितिमें नहीं रहता । ऐसा होता है–ऐसे

अवसर आते हैं कि विपत्ति अचिन्तित, अकस्मात् आती है– कि हमको सोचने, समझने, पुकारनेका अवसर ही नहीं देती। निद्रामें छत टूट गिरे या कुछ और हो जाय–आप कैसे पुकारेंगे किसीको ?

कन्हाई को आपने इतना अज्ञ समझ लिया है ? पुकारने की स्थिति हो और कोई न पुकारे तो कन्हाई उसकी ओर ध्यान नहीं देता, यह इसका स्वभाव है। यह भी इसका स्वाभाव है कि इसके जनपर संकट आये और वह पुकारने की स्थितिमें नहीं हो, श्याम स्वतः सतर्क रहता है। इससे ऐसे अवसरपर प्रसाद नहीं हुआ करता।

गोपकुमारोंने अघासुरके मुखको कोई रमणीय गुफा समझा। एक बार उनमेंसे एकने कहा भी–'मित्रो ! कहीं यह अजगर ही हुआ तो ? हम इसके मुखमें जायँ और यह हमें यह खाले ?'

सब हंस पड़े–'अयं तथा चेद् बकवद् विनङक्ष्यति।'

'कन्हाई कहीं चला गया है ? यह हमें निगलने लगेगा तो बकासुर के समान श्याम इसे भी चीर फेंकेगा।'

सब चले गये अघासुरके मुखमें और जाते ही मूर्च्छित हो गये। अब पुकारे कौन ? किन्तु पुकार की आवश्यकता ? जिसके भरोसे निर्भर घुस गये थे, वह कहीं अपने आश्रयको अविश्वस्त कर सकता है।

इन बालकों और गायोंने भी कालियादहका विषैला जल पी लिया था और तत्काल निष्प्राण होकर गिर पड़े थे । सब बहुत प्यासे थे । कन्हाई पीछे छूट गया है, इस ओर भी किसीका ध्यान नहीं गया था। न स्मरण–न पुकार। मृत पड़े थे सब कालियादहके तटपर,, किन्तु थे तो सब इस ब्रजराजकुमारके। वह बढ़ आया स्वयं और उसकी दृष्टि ही तो जड़ प्रकृतिको जीवन देती है।

कन्हाई का स्वभाव–जो उसके हैं, उनको भूलता नहीं । एक क्षणको भी उनकी ओर से उदासीन होना इसे नहीं आता । किन्तु यह नटखट

रूठता है, जब इसे पुकारने का अवसर हो और कोई न पुकारे । पुकारने योग्य स्थिति न हो तो स्वजनके मस्तकपर इसके अभय कर तो हैं ही, किन्तु जो कन्हाईके नहीं हो गये हैं –उनका काम पुकारे बिना नहीं होगा । पुकार तो किसीकी कभी इसने अनसुनी नहीं की।

(8) Read

अधूरा कुछ नहीं लेता कन्हाई। यह इसका स्वभाव है कि लेगा तो पूरा लेगा और नहीं तो लेगा ही नहीं। आप इसे आधा चित्त, आधी बुद्धि देना चाहते हैं ? लाख प्रयत्न कर लीजिये–मुख फुलाकर, पीठ फेरकर रूठे बैठा रहेगा। देखेगा भी नहीं । न आधा, न तीन चौथाई–देना है तो पूरा दीजिए। इसने स्पष्ट कह रक्खा है–

'मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय।'

'मन मुझमें रख दो ! बुद्धिको मुझमें प्रविष्ट करो ! इसीलिए गोस्वामी तुलसीदासजीको कहना पड़ा–

'जरउ सो संपति सदनसुख सुहृद मातु पितु भाइ ।
सनमुख होत जो रामपद करइ न सहस सहाइ ।।'

* * *

'जरि जाहु सो जीवन जानकिनाथ,
जिये जगमें तुम्हारो बिनु है।'

'जो श्रीरामके चरणों के सम्मुख होने में संहर्ष सहायता न करें–विरोधकी बात तो दूर, जो बेमन से सहायता करें, उन सम्पत्ति, गृहसुख, सुहृद–सम्बन्धी, माता–पिता, भाइयोंको और उस अपने जीवन को भी, जो तुम्हारा नहीं हो गया, जलने दो ! आग लगे उनमें ।'

संसारका सुख सम्मान भी और कन्हाईका प्रेम भी ? यह नहीं होनेका है। माता–पिता, भाई, स्त्री–पुत्र, घर–परिवार, शरीर की आसक्ति भी

बनी रहे, आप इनकी सुरक्षा, श्रीवृद्धिके लिए भी चिन्तित रहें और बाबा नन्द का लाड़ला भी आपका हो जाय, यह हो नहीं सकता।

कन्हाई आपका–सदा सदाका आपका ही है। सत्य यही है कि वनमाली मयूरमुकुटीके अतिरिक्त कोई आपका नहीं; किन्तु आपने ही तो इसे रूठने को विवश किया है। आप इसके हैं क्या ? पूर्णतः इसके हैं आप, तो यह आपका और इसके अतिरिक्त भी कोई, कुछ आपका है तो–व्रजराजकुमारके स्वभावमें अधूरा अर्पण स्वीकार करना नहीं है। बड़ा लज्जालु है यह। आपके समीप आपके हृदयमें कोई कुछ और होगा तो यह वहाँ नहीं आयेगा। यह लेगा–स्वीकार करेगा तो पूरा हृदय–अन्यथा बिल्कुल नहीं।

जीवन का सम्पूर्ण समर्पण–इसके तनिक भी कम श्रीकृष्णको स्वीकार नहीं है। आपने इसपर कभी विचार किया ? आप अनन्तको पाना चाहते हैं, आपके समीप लोटा हो या घड़ा, समुद्र आवेगा उसमें ? अनन्त समुद्र की प्राप्ति का एक ही उपाय है–आप पूरेके पूरे समुद्रमें उतर जाइये। आप समुद्रके और समुद्र आपका !

एक सज्जनने कहा–'आप कहते ठीक हैं; किन्तु...........'

भाई मेरे ! किसने कहा आपसे कि आप कन्हाईके पीछे पड़ें ? लोग कहते हैं और जन्म–जन्मके आपके संस्कार समर्थन करते हैं कि लोक मर्यादा, लोक–सम्मानका ध्यान रखना चाहिये। अपने तथा अपने आश्रितों के पालन–पोषण, रक्षण, वर्धन का प्रयत्न करना चाहिये। धन, यश, पदकी रक्षा–प्राप्तिसे उदासीन नहीं होना चाहिये। चाहिये ! चाहिये ! यह ठीक, सब चाहिये और इनमें आप सावधानीसे लगे रहें यह भी चाहिए–अब कृपा करके व्रजेन्द्रनन्दन और उनका प्रेम चाहिए, यह मत कहिये ! क्योंकि यह चाहिए तो, दूसरा सब 'चाहिये' छोड़े बिना उपाय नहीं है। आप एक साथ दो विपरीत दिशाओंमें नहीं चल सकते।

आपने सुना है ? न सुना हो तो सुनिये कि मस्त मौला संत कबीरक्या कह रहे हैं–

'कबिरा खड़ा बजारमें, लिये लुआठी हाथ।
जो घर फूँकै आपना, चलै हमारे साथ।।'

कबीर जलती लकड़ी लेकर खुले बाजारमें खड़ा है। जिसे अपना घर फूँकना हो, वह हमारे साथ चले।

अपना घर क्यों फूँकना ? इसलिए कि कबीर के साथ चलना है। अपना घर भी बनाये रक्खो और इस प्रेमके पन्थपर भी चलो, यह बनने वाली बात नहीं है।

लोक मर्यादा, लोक–लीक–किन्तु कभी सोचा आपने कि यह लोक क्या है ? मैं अपवाद की बात नहीं करता, सब नियमोंमें थोड़े अपवाद होते हैं, किन्तु उनसे नियम अनियम नहीं हो जाते । नियम यह कि यह सब संसार, संसारके समस्त सम्बन्ध मायिक हैं। माया किसीको प्रसन्नतासे अनुमति देती है कि वह उसके घेरेको नष्ट कर दे ?

माता–पिता, पति–स्त्री, पुत्र–भाई, परिवार–सम्बन्धी, समाज–किसीने प्रसन्नतासे कभी किसीको श्यामका होने दिया है कि आप अपने लिए ऐसी आशा किये बैठे हैं ?

मीराँ, प्रहलाद, ध्रुव–किसीको तिल–तिल तड़पाया गया, किसीको प्रलोभन दिया गया। पीछे उसकी पूजा समाज कर लेता है। लोकने कभी वर्तमानका सम्मान नहीं किया। यह तो भूतको पूजनेवाला है।

माता–पिता कहते हैं–'बच्चा आस्थाहीन है। वह न जप करता, न पूजा। मन्दिरोंमें भी उसकी श्रद्धा नहीं। गुरुजनोंका सम्मान नहीं करता। भगवान्का भजन करना चाहिए उसे।'

थोड़ेसे समझदार माता–पिता ऐसा कहते, चाहते हैं। अन्यथा तो समाज जैसा है–आप जानते ही हैं। किन्तु यदि बच्चा सचमुच भजन–पूजनमें

लगने लगे तो वही कहते हैं–'इसे समाजका भी तो ध्यान रखना चाहिए !'

'बच्चा उदासीन हो रहा है। वह ठीक–ठिकानेके वस्त्र नहीं पहिनता। उसे विवाह करना चाहिये। कुल परम्परा चलानी चाहिये। कुछ कमाना–

धमाना चाहिए। लीजिए–उसे पता नहीं क्या–क्या करना चाहिए–एक साथ उसे अनुरक्त विरक्त दोनों होना चाहिये–है न अद्‌भुत माँग ?

इस प्रकारका तो यह समाज है। समाजके अच्छे, आस्थावान् धार्मिक माता–पिता, सगे सम्बन्धी हैं और दूसरी ओर यह नटखट यशोदाकुमार है कि यह कहता है–'सबकी सुननी, माननी हो तो चुपचाप उधर ही लगे रहो । मेरी ओर आनेका दमखम हो तो केवल इधर देखो ! दूसरी सब ओरसे आँख–कान बन्द कर लो । मत सुनो कि दूसरे क्या कहते हैं। मत देखो कि दूसरोंका–देहका भी क्या होता है। मेरी ओर देखो तो मैं तुम्हारी ओर देखूँगा।'

'अपने उपार्जनका.............भाग मैं अवश्य धर्म में लगा देता हूँ। एक सेठ जी ने कहा ।

'आप धर्मात्मा हैं । मैं और क्या कह सकता था । वे सचमुच उत्तम धर्मात्मा हैं। लेकिन कन्हाई धर्मके बन्धनमें तो नहीं आता।

'आपको उत्तम लोकोंकी प्राप्ति होगी।' यह आश्वासन तो उन्हें शास्त्रने दे रक्खा है; किंतु भगवत्प्राप्ति ?

'श्याम उपार्जनका अमुक भाग लेकर संतुष्ट होने वाला नहीं है। इसे तो पूरा उपार्जन चाहिये। आप श्रीकृष्णको चाहते हैं ? तब अपनी पूरी गद्‌दी, पूरा जीवन इसके नाम कीजिये ! यह इसका कोई भाग लेने नहीं आयेगा ?

महाभारतका युद्ध होना था। युद्धमें सहायताके लिये द्वारिकानाथको आमन्त्रित करने दुर्योधन और अर्जुन साथ–साथ ही

द्वारिका पहुँचे । दुर्योधन दो क्षण पहिले पहुँच गये; किंतु श्रीकृष्ण शयन कर रहे थे, अतः सिरहानेकी ओर वे सिंहासनपर चुपचाप बैठ गये । अर्जुन दो क्षण पीछे पहुँचे और अपने नित्य–सखाके चरणोंके समीप पर्यकपर ही बैठें रहे।

निद्रा टूटी । उठे श्री द्वारिकाधीश। चरणोंके समीप बैठे अर्जुनपर दृष्टि पड़ी तो झटपट उठते हुए बोले–'अरे ! अर्जुन ! कैसे अकस्मात् आये?

दुर्योधन चौंके। लगा कि बात बिगड़ी। बोल पड़े–'मैं पहिले आया हूँ ।

'ओह, आप ! श्रीकृष्णने मुख घुमाकर देखा। दोनों की प्रार्थना सुनी और बोले–'युद्धमें एक ओर मैं अकेला रहूँगा। शस्त्र नहीं लूँगा। दूसरी ओर मेरी सशस्त्र पूरी नारायणी सेना रहेगी किंतु कुरुराज ! अर्जुन आपसे छोटे हैं । मैंने पहले इन्हें देखा है। इनको पहले अधिकार है कि ये इन दोनोंमें जो चाहें चुन लें !

अर्जुनने बड़े उल्लाससे कहा–'मैंने तुम्हें लिया।'

दुर्योधन बड़ी आतुरतासे बोले–'ठीक है, ठीक है। मैं सेना स्वीकार करता हूँ। आप तो युद्धमें अस्त्र लेकर लड़ेंगे नहीं ?

'नहीं, मैं अस्त्र नहीं लूँगा।' श्रीकृष्णने आश्वासन दिया। दुर्योधनने प्रसन्नतापूर्वक विदा ली।

'अर्जुन ! तुमने यह क्या किया ?' हँसते हुए श्रीकृष्ण बोले । 'तुम्हें युद्ध करना है और उसमें विजय पानी है। द्वारिकाकी नारायणी सेनाका पराक्रम तुमसे अविदित नहीं है। उसे विपक्षमें देकर तुमने शस्त्रहीन मुझको क्यों चुना !'

'श्याम ! ठगो मत मुझको ! अर्जुनने दृढ़ स्वरमें कहा। 'पाण्डवपुत्र पराजित हों या विजयी। तुमको त्यागकर हमें त्रिभुवनका निष्कण्टक

साम्राज्य भी नहीं चाहिये। जो जाता हो, जाय; जो नष्ट होता हो; नष्ट हों ; किंतु तुम हमारे रहो । तुमको हम छोड़ नहीं सकते।'

कन्हाई सारथि बना अर्जुनका। जो इसको चाहता है–जो इसके लिये सब उत्सर्ग किये बैठा है, कन्हाई उसका। वह जो बनावे, कन्हाई वह बननेको प्रस्तुत। वह जो करावे, कृष्ण वह करने को उद्यत।

* * *

'आप द्रोणाचार्य से कहिये कि अश्वत्थामा मारा गया ? धर्मराज युधिष्ठर से श्रीकृष्ण ने कहा।

'श्याम ! सत्य तो नहीं है यह। भीमसेनने तो केवल अश्वत्थामा नामक हाथीको मारा है।' परम धर्मात्मा सत्यके सच्चे पुजारी युधिष्ठर हिचक गये।

'मैं कहता हूँ–मेरी आज्ञा है कि आप कहिये !' श्रीकृष्णने कहा।

'अश्वत्थामा हतो नरो वा कुज्जरो वा।' युधिष्ठरने यह कहा। कहा जाता है कि युधिष्ठरका रथ भूमिसे दो अंगुल ऊपर रहता था, इस असत्यके छल–वचन के कारण भूमिसे लग गया। इस वचनके कारण युधिष्ठरको नरक–दर्शन करना पड़ा।

क्यों ऐसा हुआ ? इसलिये कि युधिष्ठरने श्रीष्कृणकी आज्ञा बिना हिचक और यथावत् स्वीकार नहीं की। युधिष्ठरको नरक दर्शन करा लेते यमराज–साहस था उनमें ?

श्रीकृष्णने कहा अर्जुनसे युद्धारम्भमें ही–

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।।

यह धर्म और यह अधर्म ! इस धर्मसे यह होगा–इस अधर्मसे यह! व्यर्थ की चिन्ता है यह सब ! धर्मका फल है स्वर्ग। आपको–स्वर्ग चाहिये या श्रीकृष्ण–प्रेम ! कन्हाई कहता है–'सब धर्मोंको–सब धर्मों के आश्रयको–इस

धर्माचरणके न करनेसे यह दोष होगा—इन सबको छोड़ दो ! मत चिन्ता करो इनकी। केवल मेरी शरण लो ! मेरे आश्रय को ग्रहण करो ! डरो मत ! शोक मत करो ! सब पापों से तुम्हें मैं छुड़ा दूँगा ।'

भय किसका ? धन—धर्म अर्थात् कायिक सुख—समृद्धि, सुयश—सम्मानका ? परलोककी बात मैं नहीं करता । आप भी नहीं करते ! आज कदाचित् ही कुछ थोड़े लोग हों जो स्वर्गकी चिन्ता करते हों और नरकका भय ? कन्हाईको अपनाने जो चलते हैं उनको नरकसे भय होगा ?

'सरगनरक अपबरग समाना।
'जहँ तहँ दीख धरे धनुवाना।'

है यह कायिक सुख—समृद्धि और सम्मानका मोह ही—नाम आप इसे कर्तव्य दे लें और कुछ भव्य नाम देनेसे तो तथ्य बदलेगा नहीं। श्यामका प्रेम और मोह साथ नहीं रह सकते ।

जहाँ राम तँह काम नहिं, जहाँ काम नहिं राम।
तुलसी कबहुँ कि रहि सकहि, रवि—रजनी इक ठाम।।

एक सज्जनने कहा—सत्संग, कथा, कीर्तनादिसे दूर ही रहना चाहिय। आजकल इसके बहाने ठगनेवाले बहुत हो गये हैं ।

मैंने पूँछा—'ठगनेवाले क्या ठगते या ठग सकते हैं ?

उनका कहना था—'धन और धर्मतक भी ।'

पहली बात—धर्मनिष्ठका धर्म ठगे जानेकी वस्तु है ? उसे कोई ठग सकता है ?

धर्म क्या—यह भी समझा है आपने या रूढ़ मान्यतामें मात्र धर्म हैं ? आचारनिष्ठका धर्म आचार और भक्तका धर्म भगवत्प्रेम ! इस प्रेम को कोई ठग सकता है ?

सर्वधर्मान् परित्यज्य' इसका अर्थ क्या आपने यह माना है कि 'सर्वाथान् सुसंरक्ष्य ?'

'लोकेऽपि तावदेव' केवल वैदिक मर्यादामें ही नहीं—लौकिक व्यवहारमें

भी उतना ही पालन–यहाँ भी यही आदर्श–

तदनुकूलाचरणं तद्विरोधिषूदासीनता च।

जिसे आप त्यागने चले हैं, जिससे आपको उदासीन होना है, उसे कोई ले ले। कोई उसका उपयोग कर ले–आपको दुःख क्यों ? शौचालयमें आप मल त्याग आये, कभी चिन्ता करते हैं कि उस मलका कौन क्या करता है ?

धन–सम्बन्ध, प्रतिष्ठाके प्रति इतना निरपेक्ष होना तो बहुत कठिन है।'

ठीक कहते हैं आप। इसीलिये कन्हाईको अपना बना लेना भी बहुत कठिन है। यह श्रीव्रजेन्द्र का इकलौता कुमार बहुत हठी है। बहुत विगड़ा स्वभाव है इसका। यह कुछ थोड़ा लेना जानता नहीं इसे तो सम्पूर्ण लेना और फिर अपनेको सम्पूर्ण देना ही आता है।

आपका सम्पूर्ण कितना है, कैसा है– यह प्रश्न नहीं है। आप सम्राट् हैं तो पूरा साम्राज्य और कंगाल हैं तो फूटे पात्रकी पूरी पूँजी–लेगा यह जो आपके पास है, वह पूरा । अच्छा बुरा, भरा खाली जैसा हृदय है, पूरा लेगा यह। इसे पूरा ही पाया जा सकता है और उसका यही मार्ग है।

(9)

असुरोत्तम वृत्रने श्यामका स्वभाव ठीक पहिचाना था। युद्धभूमिमें छिन्नबाहु असुर वृत्र इसीसे अपनेको मारनेके लिए उद्यत बज्रपाणि इन्द्रको सम्मुख देखकर उनसे निर्भय स्वर में कहता है–

त्रैवर्गिकायासविघातमस्मत्–

पतिर्विधत्ते पुरुषस्य शक्र।

ततोऽनुमेयो भगवत्प्रसादो

यो दुर्लभोऽकिंचनगोचरोऽन्यैः।।

(श्रीमद्भा० 6 ।11 ।23)

'इन्द्र ! मेरे स्वामी अकिंचन–गोचर हैं। जिन्होंने अपना 'स्व' कुछ भी बना रखा है, उनको मेरे स्वामीकी कृपा नहीं दीख सकती। तुम जानते हो–मेरे नाथ कैसे कृपा करते हैं। ? वे अपने जनोंके अर्थ, धर्म, कामकी प्राप्तिके प्रयत्नको नष्ट कर देते हैं। इस त्रिवर्ग–प्राप्तिके प्रयत्नके विनाशसे भगवत्कृपाका अनुमान हो जाता है।'

श्रीकृष्णका स्वजन जब भटकता है, जब अपने परम प्रेमास्पदसे दूर होता है, जब जन्म–जन्मके संस्कार उसे दुर्बल करते हैं, माया का चाकचिक्य उसे मोहित करता है, तब मोहन की माधुरीके स्थानपर उसे धन, भोग, या धर्म–स्वर्ग अथवा यश–कीर्ति प्रिय लगते हैं और इनकी प्राप्तिके लिए वह प्रयास करता है।

श्रीकृष्ण तो अपनाकर त्यागना जानता नहीं ! एक बार जब इसे आपने अपना बना लिया, अब आप चाहें तो भी यह आपको अपनों से दूर जाने देनेसे रहा। बड़ा नटखट, बड़ा चपल है यह मैया यशोदाका कुमार। आप प्रयत्न करते हैं धन पानेके लिये, भोग जुटानेके लिये अथवा स्वर्ग–यश आदिके लिये कोई धर्मानुष्ठान करते हैं और आपके प्रयासको इसके अदृश्य करकमल असफल कर देते हैं। आपका श्रम, आपकी–

सावधानी, आपकी निपुणता, आपके सहायक एवं उपकरण–जब कन्हाई किसी प्रयासको असफल करनेपर उतारू है तो यह सब क्या अर्थ रखता है।

श्रीकृष्णने स्वयं कहा है–

यस्याहमनुगृहामि हरिष्ये तद्धनं शनैः।

(श्रीमद् भा0 10 |88 |8)

'जिसपर मैं कृपालु होता हूँ–उसका धन धीरे से चुरा लेता हूँ।'

आप केवल माखनचोर या चित्त चोर ही नहीं हैं–अर्थ चोर भी हैं, इसे समझ लेना चाहिये । 'शनैः' पता भी नहीं लगता कि यह आर्थिक हानि

क्यों हुई—क्यों हो रही है और हो जाती है। यह धनकी चोरी आप करते हैं—कृपापवश होकर। जब कृपालु ही हुए हैं तो अधूरे क्यों हों ? धन चुरा लिया, धनके किए जानेवाले प्रयत्न निष्फल—नष्ट करते चले गये। दुखी होकर—कंगाल जानकर स्वजनों, इष्ट—मित्रोंने तिरस्कृत कर दिया। अब रहा क्या ? हारेको हरिनाम।'

जब व्यक्ति सर्वत्रसे निराश हो जायेगा, उसके प्रयत्न सफल नहीं होंगे, कोई संसारमें सहायक—स्वजन नहीं दीखेगा तब विवश होकर वह इसको पुकारेगा, उसे क्या पता कि यह उसे अपना बनानेको उतावला हो रहा है और उसकी सब असफलता इसीके करोंकी करतूत है।

ऐसा नहीं है कि कन्हाई सबको कंगाल ही बनाता है या उसके जन दर—दरकी ठोकर खाते, भोगविवर्जित एवं लोकतिरस्कृत ही होते हैं । श्यामको सुख मिलता है स्वजनोंको सुख, सम्मान, सुविध ा देकर। महाराज युधिष्ठरको राजसूययज्ञ क ाके सम्राट बनाया श्रीकृष्णने। दुर्योधनकी समस्त कुटिलताओंको ध्वस्त करके पाण्डवोंको महाभारतयुद्धमें विजयी बनाया श्यामने।

सुदामाको कंगालसे कुबेराधिक वैभवसम्पन्न किसने किया ? किसने भीष्मको धर्मके परम मर्मज्ञके रूपमें लोक—प्रख्यात किया। उग्रसेनको सम्राट् बनानेवाला कौन ?

सुग्रीव और विभीषणको सिंहासन मिलता, यदि श्री रघुनाथ कृपा न करते ?

ध्रुवको ध्रुवपद और प्रहलाद को दैत्येश्वर बनाकर लोकसम्मानित करनेका श्रेय किसे है ? बलिपर भगवान् वामन कृपा न करते—कौन जानता उन्हें ? वे इन्द्र बने भी रहते, कितने लोग जानते हैं वर्तमान इन्द्रका नाम ? पता नहीं कितने इन्द्र हुए—गये—उनको कोई क्यों स्मरण करे ?

विदुर, हनुमानकी बात छोड़िये—गीध, गणिकादिको जो लोक—सुयश

मिला है, किसका अनुग्रह है यह ?

श्रीपतिके पदपंकजों को छोड़कर भी कहीं लक्ष्मी स्थिर रह सकती है? अर्थ और काम तो श्री देवीका अनुग्रह ही है या और कुछ कन्हाईकी कृपादृष्टि के बिना यह अनुग्रह सचमुच मिलता है किसीको

आप धर्मकी पूछते है ?

'धर्मस्य प्रभुरच्युतः।'

यह अच्युत ही धर्मका स्वामी है। इसको त्यागकर रहनेवाला धर्म तो अधर्म है।

अब आप कहेंगे–'परस्पर विपरीत बात मत कहिये !'

किंतु परस्पर विपरीत बात मैंने कही नहीं है। वैसे कन्हाई है ही त्रिभंग–टेढ़ा ! इसकी अटीपटी चाल कुछ कठिनाईसे समझमें आती है।

'त्रैवर्गिकायासविधातमस्मत्पतिर्विधत्ते पुरुषस्य ।'

वृत्र असुर सही, किन्तु महाभागवत है । उसकी बात बहुत महत्त्वकी, बहुत पते की है। 'पुरुषस्य–निजजनस्य' जो श्यामके अपने स्वजन हैं, केवल उनके सम्बन्धकी यह बात है दूसरोंको अपना प्रारब्ध भोगना चाहिये। कृष्णको उनके सम्बन्धमें टाँग अड़ानेका अवकाश नहीं। कोई अभिरुचि उसकी उन लागोंमें नहीं, जो उससे तटस्थ हैं।

'आयासविघातं विधते' मनुष्य आयास–परिश्रम क्या बिना आसक्तिके करता है ? जब त्रिवर्गमें–'अर्थ, धर्म, काममें कहीं आसक्ति होगी, किसीको पानेकी तृष्णा होगी; तभी तो उसकी प्राप्त्रिके लिए प्रयास होगा। यह कोई भली बता है कि कोई ब्रजेन्द्रनन्दका अपना जन होकर भी अन्यत्र चित्तको आसक्त बनावे! इस त्रिभुवनसुन्दर आनन्दकन्दको छोड़कर भी क्या और कुछ स्पृहणीय है ?

किया क्या जाए ? मन दुर्बल है । जन्म–जन्मान्तरके संस्कार पड़े

हैं चित्तमें । इन संस्कारोंसे विवश प्राणी अनेक बार भटक जाता है। माया अत्यन्त प्रबल है। उसके प्रलोभनोंमें बड़े–बड़े पड़ जाते हैं। अतः अर्थ, काम धर्मकी स्पृहा जाग जाती है। अनेक बार बुद्धि भ्रममें पड़ जाती है। व्यक्ति अपनी दुर्बलतासे या भ्रान्तिवश त्रिवर्गकी स्पृहा करने लगता है। उसे पानेका प्रयास करने लगता है।

स्वजन दुर्बलताके ग्रास बन जायँ, भ्रान्त हो जायँ, तो क्या श्याम भी प्रमाद करने लगे ? व्रजराजके कुमारको प्रमाद स्पर्श नहीं करता। वह अपने जनोंको भटकता देखता है तो अधिक सतर्क हो जाता है। वह उनके प्रयासको नष्ट कर देता है। उन्हें अपनेसे दूर नहीं जाने देता।

कन्हाई धन–वैभव, सृष्टिके समस्त भोगका परमाधिष्ठान है और धर्मका स्वामी है। श्रीव्रजराजका लाल न कृपण है, न असूयु। उदारचक्र–चूड़ामणि है मोहन और इतना है, इसीलिये वह अपने जनोंके अर्थ, धर्म, कामकी प्राप्ति के प्रयास नष्ट कर देता है जो देने में समर्थ है, नष्ट करनेका उसीको अधिकार है ।

आपने बड़ी सावधानीसे, बहुत चतुर सहायकोंको लेकर व्यापार किया। बहुत उपयुक्त समयमें । दूसरे सब आपके सहकर्मीलाभ में और आपको घाटा लगा। यह कृपा हुई आपपर–आपको श्यामने स्वजन माना।

आपने सविधि अनुष्ठान किया। पूरा जप–पुश्चरण सम्पन्न हुआ। मन्त्र, विधि, श्रद्धामें कहीं कोई त्रुटि नहीं । हवन–तर्पणादि सव सम्पूर्ण; किंतु मन्त्रदेवता करे क्या ? वह अन्ततः सर्वसमर्थसे बलवान् तो नहीं है। सर्वेश्वर जब उसे डाँट दे–'चुप बैठो ! अब आपके अनुष्ठानकी सफलता मन्त्रदेवता दे तो कैसे ?

आपको ज्योतिषियोंने बहुत यश, बहुत भोग–सम्पन्न होना बतलाया था। ज्योतिषशास्त्र झूठा नहीं है; किंतु ज्योतिष आपके प्रारब्धको ही तो बतलायेगा । यह जो 'कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं

समर्थ' चिर चपल है, इसपर तो कोई अंकुश लगानेमें समर्थ नहीं ? यह आपके प्रारब्ध को एक ओर पटकता जा रहा है–इसकी कोई दवा किसीके समीप कहाँ है ? भक्तका कोई प्रारब्ध नहीं होता। श्रीकृष्णको जिसदिन आपने 'अपना' कहा, प्रारब्ध–कर्मदेवता उसी दिन आपको हाथ जोड़ चुके। अब तो यह नटखट जो करे, जो चाहे–वह विधान आपके लिये।

यह ऐसा क्यों करता है ? कृपा परवश होकर। स्वजनोंको अपने से दूर होते देखकर इससे रहा नहीं जाता । उनको अपनी ओर खींचना इसका स्वभाव है।

परमविरक्त देवर्षि नारद; किंतु–

मोह न अंध कीन्ह केहि केही।
को जग काम नचाव न जेही।।

देवर्षि विवाह करने को उद्यत हो गये और वह भी विश्वमोहिनीसे! उन्होंने उस कन्याका हाथ देखा तो उसके लक्षण दीखे–

यहि जो बरै अजय सो होई।
समर भूमि तेहि जीति न कोई।।

'अहो मोहमहिमा बलवाना।' अन्यथा नारदजीको क्या सुर–असुर सबसे युद्ध करके त्रिलोकविजयी होना अभीष्ट था। वे अजर–अमर तो हैं ही। विश्वमोहिनीमें ऐसा कोई भी तो गुण नहीं था जो उनके लिये दुर्लभ हो या उन्हें अभीष्ट हो। किन्तु लीलामयकी लीला।

देवर्षिने एक श्लाघ्य कर्म इस अवस्थामें भी किया। उन्होंने दूसरा कोई उपाय न अपनाकर भगवान्‌को ही पुकारा। उनका भक्त–स्वरूप है यह। वे और कुछ करते तो भी वह प्रयास सफल नहीं होना था; किंतु तब वह भक्तिका कलंक होता।

मोर दास कहाइ नर आसा।
करइ तो कहहु कहा विस्वासा।।

'हम दुर्वल हैं–हमारे मनमें धनकी, भोगकी, यशकी स्पृहा है; किंतु लेंगे हम तुम्हीं से। तुम दो या मत दो–हम अन्यसे माँगेंगे नहीं । अन्यत्र जायेंगे नहीं। तुम्हें–केवल तुम्हें पुकारेंगे।'

भक्तका यही स्वभाव–यही स्वरूप है। देवर्षिने किया यही। उनका निश्चय इस मोहग्रस्त अवस्थामें भी अविचल है–

मोरे हित हरि सम नहिं कोऊ।

भगवान् प्रकट हुए। उन्होंने स्पष्ट कह दिया–

कुपथ भाग रुज व्याकुल रोगी।
वेद न देहि सुनहु मुनि जोगी।।

रोगाक्रान्त व्यक्ति कुपथ्य मांगेगा तो चिकित्सक उसे कुपथ्य दे देगा ?

अबोध शिशु, अग्नि या विष उठानेको मचलेगा तो माता उसको वह उठाने देगी ?

तब क्या श्रीकृष्ण किसीको धन–वैभव, सुख–भोग, पद प्रतिष्ठा देते नहीं हैं ? देते तो हैं क्यों देते हैं ? क्यों दिया उन्होंने ?

कन्हाई देता है–दिया है इसने और देता है तो अल्प देना इसे आता नहीं। भरपूर देता है। क्यों देता है–यह मत पूछिये। किसे देता है, यह पूछिये।

किसे देता है ?

जिसे धनमें, धर्ममें भोगमें कोई रस–कोई 'रूचि, कोई आसक्ति नहीं है। जो अर्थ, धर्म, कामको पाकर भी उनमें बँधता नहीं। जो इनको श्यामका प्रसाद समझकर ग्रहण करता है। इनके आनेमें जिसे हर्ष और जानेमें जिसे विषाद नहीं होता ।

मिथिलायां दहामानायां न मे दहाति किंचन।

सारी मिथिलापुरीके जल जाने पर भी मेरा तो कुछ नहीं जल रहा है। –यह क्षमता जिसमें है–उसे श्याम राज्य देता है।

चिकित्सक बादाम या पिश्तेका सेवन किसे बतलायेगा ? किसे वह गरिष्ठपाक देगा ? जिसमें उसे पचानेकी क्षमता हो। जिसे ये गुरुपाक वस्तुएँ रोगी न करके शक्ति दे सकें।

श्यामका सवभाव अपने स्वजनोंको नित्य संरक्षण देना है। अधिक प्राणी दुर्बल हैं–मानसिक दृष्टिसे रोगी हैं इसलिये इस ब्रजराजकुमारको उन सबके प्रति अधिक सावधान रहना पड़ता है। ये रोगी सदा कुपथ्यकी प्राप्तिका प्रयास करते हैं। कभी इधर हाथ बढ़ाते हैं; कभी उधर। कभी एकसे कुछ माँगते है, कभी दूसरेसे। ये देवता–देवी, यज्ञ–अनुष्ठान अथवा लौकिक प्रयास; किंतु कृष्ण असावधान नहीं होता और इसके स्वजनोंको कुपथ्य अर्पित करनेका साहस किसीमें है नहीं। रोगीका कुपथ्य प्राप्तिका प्राप्तिका प्रयास तो उत्तम अभिभावक असफल करता ही रहेगा।

किस कुपथ्यप्रेमी रोगीने अभिभावकको सदय कहा है ? रोगी तो उसे निष्ठुर कहेगा ही। रोगी की बातें, रोगी की गालियाँ, रोगीका तिरस्कार–यह सब क्या ध्यान देने की बात है ?

ये जगत्के मानसिक रोगी। कन्हाईको अपना बनाकर फिर कहते हैं–'बड़ा क्रूर, बड़ा निष्ठुर।' पता नहीं और क्या–क्या ! अनन्त करुणार्णव कृष्णचन्द्र कहाँ सुनता है–कहाँ ध्यान देता है इनकी चेष्टाओं एवं शब्दोंपर। इसे तो अपनोसे सहज स्नेह है।

श्यामका स्वभाव–अपने जनोंके स्खलनमें सदा उनकी रक्षा करते रहना। अतः अब अपनोंके त्रिवर्ग–प्राप्तिके प्रयासको विफल करनेका स्वभाव बनाये बैठा है। इसका यह स्वभाव इससे महान् कोई अभयका आश्वासन

पुरुषके लिए हो सकता है।

(10)

माखनप्रेमी नन्दलाल—लेकिन पूछिये तो इसका सबसे प्रिय आहार है—'अपनों का अभिमान।' यह हरि 'गर्वहारी' है।

'तात राम कर सहज सुभाऊ।

जन अभिमान न राखहिं काऊ।।

देवर्षि नारदको अभिमान हुआ—'मैंने कामको जीत लिया।'

'जिता काम अहमिति मन माहीं।'

परिणाम यह हुआ कि विश्वमोहिनीसे विवाह करनेको उतावले हो गये। यह विश्वमोहिनी—न कोई नगर, न नरेश और न कोई विश्वमोहिनी। देवर्षिके मनमें जो गर्व उत्पन्न हुआ—गर्वहारीने उसे दूर करनेके लिए यह माया रच डाली ।

* * *

'गरुड़जी ! हनुमान्जी मलयाचलपर हैं उन्हें कहिये कि उनको मैंने स्मरण किया है।' एक दिन सहसा द्वारकाधीशने आज्ञा की। अब गरुड़को क्या पता कि उनके ये लीलामय क्या करना चाहते हैं।

'प्रचण्डवेगो मधुसूदनासनः।'

भगवान्के वाहन गरुड़—उनके वेगकी समता नहीं कहीं। उनको अपने तीव्रतम वेगका गर्व हो तो उचित गर्व नहीं है यह ? किन्तु जिसका आहार ही निजजनोंका गर्व है—उसको आप कह भी क्या सकते हैं ? उसके विशाल नेत्र इसी खोजमें रहते हैं कि कहीं अपनोंमें कोई अहंकार दीखे और झट हाथ बढ़ाकर वह 'हप्प' कर ले ।

'हनुमानजी ! आपको भगवान्ने बुलाया है द्वारका में !' गरुड़को कितने क्षण लगने थे। वे पहुँचे और संदेश सुनाया उन्होंने—'मेरी पीठपर बैठ

लीजिये तो झटपट पहुँचा दूँ।

'भगवान्‌ने बुलाया है ? कौन भगवान् ?' हनुमानजीने पूछ लिया।

'वही नवजलधर सुन्दर ! गरुड़ अन्ततः श्री हरिके वाहन हैं। वे इतना जानते हैं कि हनुमानजीके आराध्य कौन हैं। 'भगवान् भी कहीं दो–चार होते हैं ?'

'अच्छा, आप चलिये। मैं आरहा हूँ।' हनुमान्‌जीने सहज भावसे कहा। भगवान् नारायणके वाहनकी पीठपर बैठनेकी बात वे कैसे सोच सकते थे !

'आपको बहुत देर लगेगी।' गरुड़ने हठ किया–'मैं शीघ्र पहुँचा दूँगा।'

मैं आपसे पहले पहुँच रहा हूँ। आप चलिये। 'हनुमानजीने हँसकर कहा ।

'आप समझते तो हैं नहीं।' गरुड़ झुँझलाये। यह कपि उनसे पहले पहुँचनेकी बात करता है। 'प्रभुने बुलाया है। मैं आगे जाकर उन्हें क्या उत्तर दूँगा और मेरे वेगको आप पहुँच सकते नहीं। चलिये–ले चलता हूँ मैं।'

गरुड़को अपनी शक्तिका भी गर्व कम नहीं है उन्होंने अमृत–हरणके समय समस्त देवताओंके छक्के छुड़ा दिये हैं। इन्द्रके वज्रसे भी उनका कुछ बिगड़ा नहीं ! वज्रकी अमोघताका सम्मान करनेके लिये अपना एक पंख गिरा दिया था उन्होंने स्वेच्छासे । यह बानर उनकी बात ही नहीं सुनता तो इसे बलपूर्वक उठा ले जाना चाहिये।

'मेरे प्रभु भी बड़े विनोदी हैं । उन महाराजाधिराजने कैसा धृष्ट पक्षी पाल लिया है।' हनुमान्‌जी मनमें कहा। बलपूर्वक अपनेको उठाने आये, गरुड़को पकड़कर फेंक दिया उन्होंने। गरुड़ दूर द्वारकाके समीपके समुद्रमें जा गिरे।

उधर द्वारकामें गरुड़को भेजकर द्वारकाधीशने अपने चक्रको आज्ञा दी—'द्वारपर रहो। कोई अपरिचित भीतर न चला आवे।'

चक्रको भी गर्व था कि उसकी शक्तिका अन्त नहीं है। वह द्वारावरोध करके खड़ा हो गया । श्यामसुन्दरने सत्यभामाजीसे कहा—'मैंने हनुमान्‌जीको बुलाया है। वे मेरे श्रीरामरूपके आराधक हैं। मुझे सिंहासनपर धनुर्धर राघवेन्द्र होकर बैठना है। अतः श्रीजनकतनयाके वेशमें बैठनेके लिये रुक्मिणीको बुला दो। श्रीमैथिलीके शीलसौन्दर्यकी छाया तुम्हारी बड़ी बहिनमें है।'

'मैं क्या सौन्दर्यमें कम हूँ किसीसे ?' सत्यभामाजीने तनिक रूठते स्वर में कहा—'वेश ही थोड़ा परिवर्तित करना है, सो मैं कर लेती हूँ।'

'जैसी तुम्हारी इच्छा ! श्रीकृष्णचन्द्र मुस्कराकर रह गये। उधर हनुमान्‌जी द्वारका पहुँचे तो चक्रने द्वारपर रोका—'कौन भीतर जा रहा है ?'

'मैं हनुमान् ! प्रभुने बुलाया है मुझे।'

'आज्ञा नहीं है—भीतर जानेकी।'

'आप पूछ लीजिये ! प्रभुने ही बुलाया है।'

'मैं द्वार छोड़कर नहीं जाऊँगा। रुके रहो। कोई आयेगा तो उसे पूछनेको कह दूँगा।'

'पता नहीं कोई कब आयेगा।' हनुमान्‌जीने सोचा— चक्र जाने दे नहीं रहा था। उसे उठाकर उन्होंने मुखमें रख लिया और भीतर पहुँच गये।

'हनुमान् ! आ गये तुम ? दूर्वादलश्याम, धनुर्धर सिंहासनासीन प्रभुके चरणोंपर श्रीमारुतिने मस्तक रखा तो अत्यन्त स्नेहसे उनके सिरपर कमल—कर फेरते वे लीलामय हँसकर पूछने लगे—'तुम्हें द्वारपर किसीने बाधा तो नहीं दी ?'

'यह रोक रहा था मुझे।' मुखमेंसे चक्रको निकालकर सम्मुख करते हुये हनुमान्जी बोले–'इसे प्रभुके पास ही लेता चलूँ।'

इतनेमें समुद्र–जलसे सर्वथा भीगे, हाँफते गरुड़ पहुँचे । अपने आराध्यके चरणोंमें हनुमानजी को बैठे देखा। उन्होंने तो मस्तक झुका लिया।

'गरुड़ ! तुम्हारी यह दशा ? समुद्र स्नान करने लगे थे ? प्रभुने पूछा।

'आपने ! यह पक्षी पाल तो लिया है; किन्तु यह बहुत धृष्ट है। साथ ही बहुत मन्दगति है यह। वैसे तो पता नहीं स्वयं कितनी देरमें आ पाता। मैंने इसे पकड़कर द्वारकाकी ओर फेंक दिया था।' हनुमान्जीने स्वयं ही सुना दिया। तनिक रुककर फिर उन्होंने हाथ जोड़कर मस्तक झुकाया–'प्रभु !'

'क्या कहना है ?' मुस्कराये लीलामय।

'महारानीजी कहाँ हैं ? आज मैं अपनी माताको क्यों नहीं देख रहा हूँ।' हनुमान्जीने सत्यभामाजीको प्रणाम किया ही नहीं था। अब वे पूछने लगे–'आज यह किस दासीको प्रभुने इतना सम्मान दे रक्खा है ?'

लज्जासे आरक्तमुख सत्यभामाजी स्वयं उठकर चली गयीं। उन्होंने स्वयं रुक्मिणीजीको भेजा–'बहिन ! तुम्हारा वह बानर बेटा आया है। तुम्हारे अतिरिक्त दूसरी कोई उसे द्वारकेशकी महारानी दीखती ही नहीं। शेष सबको तो वह दासी ही समझता है। जाओ, उस पुत्रको सँभालो।'

'ओह ! हनुमान !' रुक्मिणीजीमें जो वात्सल्य जगा तो सत्यभामाके स्वरके आक्रोशपर उनका ध्यान ही नहीं गया। वे जैसे थीं, वैसे ही तीव्रगतिसे बढ़ गयीं।

*   *   *

आप इस भ्रममें न रहें कि श्याम किसीका–कम–से कम हनुमान्जीका

गर्व तो क्षमा कर ही देगा। अपनोंमें किसीका गर्व यह क्षमा नहीं करता। स्वजनोंका अभिमान सह लेना इसके स्वभावमें नहीं। हनुमान्‌जीको तो त्रेतामें ही यह शिक्षा मिल गयी। एक बार उनके मनमें तनिकसा अपने बलका गर्व आया। अन्यथा तो वे नित्य निरभिमान हैं। लंकाको भस्म करके, रावणकी सेनाका गर्व चूर करके वे ऋष्यमूकपर लौटे, तब भी उनका कहना था–

'नाथ न कछु कपि की प्रभुताई।
प्रभु प्रताप जो कालहिं खाई ।।

लंकाके युद्धमें भी श्रीआन्जनेय निरभिमान रहे । अभिमान एक बार आया। श्रीरामके अश्वमेधीय अश्वके रक्षकों में वे थे। वाल्मीकि–आश्रमके पास अश्व आया तो श्रीजनक–तनयाके लड़ैतोंने उसे पकड़कर बाँध लिया। दो छोटे बालक, उनके छोटे–छोटे धनुष–उन्हें युद्धमें सम्मुख देखकर हनुमान्‌जीको लगा–'कुम्भकर्ण और रावणतक मेरा मुष्टिप्रहार नहीं सह सके, मेघनाद–जैसा धनुर्धर भागता था मेरे सामनेसे, ये बच्चे लड़ेंगे मुझसे ?'

अपने बलका गर्व आया जहाँ मनमें और लवकुशके धनुषसे दिव्य वाण बरसने लगे। अयोध्याकी सेना के शूर तो मूर्छित भूमिमें बिछे पड़े थे। कुशने हनुमान् और अंगदको बाण मार–मारकर आकाशमें उठा दिया और वहीं शराघातसे चक्कर खिलाते रहे। अत्यन्त आहत, व्याकुल करके तब इन्हें नीचे गिराया और फिर बाँध लिया।

कुशके द्वारा बाँधे हनुमान्‌को बन्धनमुक्त कराया श्रीविदेहनन्दिनीने। उस दिन सदा–सदाके लिये पवनकुमार का स्वपौरुष–गर्व गल गया।

* * *

प्रेमकी ध्वजा गोपियाँ–महारासके प्रारम्भमें गर्व उनमें आ गया। वे श्री व्रजराज–कुमारकी वंशीध्वनि सुनकर अपने देह–गेह, स्वजन–स्नेहको भूलकर दौड़ी आयी थीं वन में। श्यामने उन्हें पहले तो कह दिया–'घर लौट

जाओ ! किंतु वे लौट जानेके लिये तो आतुर होकर दौड़ी नहीं आयीं। उनका रुदन, उनका दृढ़ अनुरोध–कन्हाई द्रवित हो गया। इसने उनका सम्मान किया।

श्यामका स्वभाव ही है कि अपनायेगा, सम्मान करेगा तो अपनेको न्यौछावर कर देगा। कुछ उठा नहीं रक्खेगा। यह रागी है तो पराकाष्ठाका और बिरागी है तो भी पराकाष्ठाका ही। इसने गोपियोंका भरपूर सम्मान किया। बस, उनको भ्रम हो गया–उनको लगा कि हम 'इतनी सुन्दरी, इतनी गुणवान् हैं कि मदनमोहन हमपर मुग्ध हो गये हैं।'

तासां तत् सौभगमदं वीक्ष्य मानं च केशवः।
प्रशमाय प्रसादाय तत्रैवान्तरधीयत ।।

(श्रीमद्भागवत 10 ।29 ।48)

केशवने देखा–'इनमें तो अपने सौन्दर्य सौकुमार्य आदिका मद–गर्व आ गया और इस गर्वमें ये अब मुझसे रूठने–मान करने लगीं।' रूठेको मनानेमें मोहनको आनन्द आता है; किन्तु अपने अभिमानके कारण कोई मान करे तो ? तब तो श्रीकृष्णचन्द्र उस अभिमानको नष्ट करेगा ही और ऐसा करता है वह 'प्रसादाय' करके अतिशय कृपापात्र बनाने के लिये। गोपियोंका मान नष्ट करनेके लिये यह अन्तर्हित हुआ और यह भी उनपर कृपा करनेके लिये ही इसने किया।

* * *

'अस अभिमान जाइ जनि भोरे।
मैं सेवक रघुपति पति मोरे ।।'

अभिमान–अभिमानमें भी अन्तर है–बहुत बड़ा अन्तर। अपने बल, रूप, गुण, धन, विद्या, बुद्धि, साधन भजनका अभिमान एक बात और उससे सर्वथा भिन्न अभिमान कि सर्वलोकेश्वर सर्वसमर्थ, सर्वज्ञ, सकलसद्

गुणगणैकधाम हमारा अपना है। उसका बलहमारा बल है। उसका अनन्त ज्ञान हमारा ज्ञान है। उसकी शक्ति हमारी शक्ति है। हम अपराजित–हम अदम्य हैं उनके बलपर। कलि और उसके पाप–ताप, उसके परिवार–परिकर किस क्षुद्र गणनामें आते हैं। सिर पीटें नरकके अधिदेव और स्वर्गका इन्द्र दोनों–कन्हाई हमारा है। हमारी ओर देखनेका साहस करनेकी शक्ति नहीं किसीमें।

युग–युगमें तप करनेवाले महातापस, समाधिसिद्ध योगी, भुवनविख्यात ज्ञानी गिर गये मायाके एक नन्हे झटकेमें । पुराण क्या इसके प्रमाण नहीं हैं? क्यों हुआ ऐसा ? इसलिए कि इस नटखट गोपकुमार को अहंकार किसीका सहय नहीं। किसीको लगा–'मैं पुराना तपस्वी, योगी, ज्ञानी....' बस, इसकी अंगुलियाँ हिलने लगीं। स्वर्गकी अप्सरा आयें, न आयें, निमित्तोंकी कमी है नन्दलालके समीप ? एक चिड़िया पेड़पर से बीट कर देगी सिरपर और तपस्वीके तपको क्रोध निगल जायगा। बाबा नन्दका लड़का अँगुली हिलायेगा तो एक तिनकेको किसी लोकपालसे समर्थ बनाकर दिखा देगा।

जनको पन राम न राख्यो कहाँ ?

दूसरी ओर इस व्रजराजके लालमें एक अद्भुत आन है जो उसके बलपर, उसके सहारे कहीं खड़ा है, उसका मान तो कन्हाई अपने मानसे महान् मानता है। उसको पराजित करनेकी शक्ति त्रिभुवनमें नहीं–

'जौ मम चरन सकसि सठ टारी।
फिरहिं राम सीता मैं हारी ।।'

बालि–तनयने अपने बलपर प्रतिज्ञा की थी यह ! रावणके पुत्र और परिकर अंगदका चरण हिला नहीं सके। स्वयं दशग्रीव उठा–उसपर अंगद व्यंग न भी करते, क्या होता था ? उनके चरणके साथ जिसका आश्रय था, वह आश्रय कभी डिगा है ?

* * *

आजु जौं हरहि न शस्त्र गहाऊँ।
तौ लाजों गंगाजननी कौं संतनु सुत न कहाऊँ।।'

भीष्मपितामहने अपने बल पौरुषके गर्वमें यह प्रतिज्ञा की थी ? प्रतिज्ञा उसके बलपर की गयी थी जो विपक्षमें अर्जुनके रथपर सारथि बनकर बैठता था। और जिसने स्वयं महाभारतके युद्धमें शस्त्र न उठानेकी प्रतिज्ञा कर रक्खी थी।

यह कोई नवीन अवसर नहीं था। व्रजमें आये दिन ऐसे अवसर पर आते थे और कन्हाई को बचपनका अभ्यास है--ऐसे अवसरपर व्यवहार करनेका।

कोई गोपबालक कह देता था–'कनूँ ! मैं तुझसे बलवान् हूँ।'

श्याम ताली बजाकर कहता –'मैं तुझसे बलवान्। चल, मल्ल–युद्ध कर लें !'

'आ आ ! देख तुझे कैसी पटकनी देता हूँ।'

'हाँ–मैं तुझे पटकनी दूँगा।'

आप जानते हैं–किसीकी बात रहेगी ? कौन किसे पटकनी देगा? मैया यशोदाका सुकुमार लाला ऐसे मल्लयुद्धमें सदा हार जाता है। सखाको विजय मिलनी चाहिये। अंखाड़े में विजयश्री लेनी होगी तो मामा कंसके मल्लों को चारों खाने चित्त करके ले लेगा'। जो दृढ़ आस्थावान् है–'कन्हाई मेरा ! उसे पराजित तो कन्हाई स्वयं भी नहीं कर सकता।

प्रतिज्ञा महाभारतयुद्धमें भीष्मकी रहनी थी। कृष्णको अपनोंके सम्मुख हार जानेमें, अपनी प्रतिज्ञा तोड़ देनेमें हिचक कहाँ हैं। यह तो इसीलिये 'रणछोड़राय' बना ही है।

जो अभिमान किसीका–किसी निजजनका अपने बल–गुण–साधनका है, उसे श्याम रहने नहीं दे सकता। इसका स्वभाव है–'जनके गर्वका अपहरण।' किन्तु जो मान, जो गर्व श्यामके सहारे है, कन्हाईके अपनत्वका है–धन्य है वह मान। नित्य अपराजित है वह। उसके पीछे तो श्रीब्रजेन्द्रनन्दन अपना मान, अपनी प्रतिज्ञा भी भंग करनेको उद्यत रहता है। दूसरा कौन है जो उसको अफल बना सकता है ? □

श्याम का स्वभाव

मधुराष्टकम्

अधरं मधुरं वदनं मधुरं नयनं मधुरं हसितं मधुरम ।
हृदयं मधुरं गमनं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥ 1॥
वचनं मधुरं चरितं मधुरं वसनं मधुरम् वलितं मधुरम ।
चलितं मधुरं भ्रमितं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥ 2॥
वेणुर्मधुरो रेणुर्मधुरः पाणिर्मधुरः पादौ मधुरौ ।
नृत्यं मधुरं सख्यं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥ 3॥
गीतं मधुरं पीतं मधुरं भुक्तं मधुरं सुप्तं मधुरम् ।
रूपं मधरं तिलकं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥ 4 ॥
करणं मधुरं तरणं मधुर हरणं मधुरं रमणं मधुरम् ।
वमितं मधुरं शमितं मधुरंमधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥ 5 ॥
गुंजा मधुरा माला मधुरा यमुना मधुरा वीची मधुरा ।
सलिलं मधुरं कमलं मधुरंमधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥ 6 ॥
गोपी मधुरा लीला मधुरा युक्तं मधुरं मु क्तं मधुरम् ।
दृष्टं मधुरं शिष्टं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥ 7 ॥
गोपा मधुरा गावो मधुरा यष्टिर्मधुरा सृष्टिर्मधुरा ।
दलितं मधुरं फलितं मधुरंमधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥ 8 ॥

शारदा ऑफसेट प्रिन्टर्स शिको० रोड, एटा